श्रीमद्भगवद्गीता

भाषा

अर्जुन गीता

महात्म्य व चित्र एव कमल नेत्र स्त्रोत्र
हनूमान चालीसा व
आरती सहित



देहाती पुस्तक भंडार चांवड़ी बाजार देहली

मूल्य

श्रीमद्भगवद्गीता भाषा

सम्पूर्ण १८ अध्याय व माहात्म्य सहित (सचित्र)

माहात्म्य, ईश्वर प्रार्थना, कमल नेत्र स्तोत्र और नागलीला के अतिरिक्त गीता बलीनाथ, हनुमान चालीसा, भगवान् के १०८ नाम और अनेक प्रकार के भजन नई-नई आरतियां आदि ६४ रत्न सम्मिलित किये गए हैं।

॥ श्री स्वामी किशोरदास कृष्णदास कृत ॥

हिन्दी भाषा में सरल रूपान्तर



प्रकाशक—देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

तार का पता 'वैज्ञानिक' दिल्ली, फोन २६१०३०

मूल्य : साढ़े तीन रुपया विदेशों में सात शिलिंग

टैक्निकल प्रिंटिंग प्रेस, सोनीपत (निकट दिल्ली) में मुद्रित।

ईश्वर-प्रार्थना

हे सर्वदानन्द सर्वशक्तिमान्, पूर्णब्रह्म, अजन्मा, अमर, अनंत, सर्वव्यापक, न्यायकारी, दयामय, ईश्वर आपकी महिमा का कोई पार नहीं और आपके शुभ नामों की कोई संख्या नहीं। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और देवता भी आपका पार न पा सके तो मूढ़ अज्ञानी क्योंकर आपके नामों का वर्णन कर सकते हैं? हे महाप्रभो! आप ऐसे दयावान् हैं कि अपनी अपार दया से गूंगे को वाचाल तथा लंगड़े को पर्वतों से फांदने के योग्य बना सकते हैं। हम तुच्छ जीवों को भी अपनी दया से इस योग्य बनाइये कि सर्वदा आपके चरणारविन्द का ध्यान रखते हुए संसार में अत्यन्त हर्ष के साथ रहकर अन्त को आपका शुभ धाम प्राप्त कर सकें। हे प्रभु ऐसी कृपा कीजिये।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

श्रीगणेशाय नमः

卐  卐

श्रीगणेशाय नमः

श्री ओं नमो भगवते वासुदेवाय विश्वेश्वराय ।
आदि पुरुष अपरम्पार अलेखपुरुषाय नमः ॥

दोहा—जगतबन्धु ज्योतिस्वरूप, जिय की जाननहार ।
हरि यश माँगन आया, दास प्रभू के द्वार ॥

अर्जुन को गीता का ज्ञान जो श्रीभगवान्‌जी ने दिया है, वह मुझको मिले। हे भवभंजन भगवान् श्रीकृष्णजी यह किशोरदास मांगता है। हे प्रभु गीताज्ञान के उच्चारण करने से तेरे पूर्णरूप को पाता है। हे प्रभु ! मैं आपके चरणों की शरण लेता हूं आप परम प्रवीण हो और मैं आपकी शरण में पड़ा हूं। किशोरदास और

कृष्णदास दीन गरीब है और आप सन्त की विनती को मान लेते हो, सो हे कमलावल्लभ! श्रीकृष्ण भगवान्जी कृपानिधानजी तेरे संतों भक्तों के लिए मैं यह गीता-ज्ञान सरल भाषा में कहता हूं।

श्री गीता के ज्ञान की कथा प्रारम्भ हुई

पहला अध्याय–विषादयोग

जब कौरव और पांडव महाभारत के युद्ध को चले, तब राजा धृतराष्ट्र ने कहा कि मैं भी युद्ध का कौतुक देखने को चलूंगा तो व्यासजी ने कहा कि हे राजन्! तुम्हारे नेत्र नहीं हैं, नेत्रों के बिना क्या देखोगे? तब राजा धृतराष्ट्र ने कहा हे प्रभु देखूंगा नहीं पर श्रवण तो करूंगा, तब व्यासदेवजी ने कहा, हे राजन् तेरा जो सारथी संजय है, वह मेरा शिष्य है। जो कुछ महाभारत के युद्ध की लीला कुरुक्षेत्र में होगी, संजय तुमको यहां बैठे ही श्रवण करावेगा, जब

व्यासदेवजी के कमल मुख से यह वचन सुने तब संजय ने श्रीव्यास-देवजी के चरणों को नमस्कार किया और हाथ जोड़ कर विनती की, हे प्रभुजी महाभारत के युद्ध का चरित्र कुरुक्षेत्र में और मैं हस्तिनापुर में कैसे जानूंगा और राजा को किस भांति कहूंगा जब इस प्रकार संजय ने व्यासजी के आगे विनती करी तो श्री व्यासदेवजी ने प्रसन्न होकर संजय से कहा कि हे संजय! मेरी कृपा से तुझे यहां सब कुछ दिखाई देगा और बुद्धि के नेत्रों से सूझेगा जब व्यासदेवजी ने यह वर दिया तो उसी समय संजय की दिव्य दृष्टि हुई और बुद्धि भी उनकी दिव्य हुई। आगे अब महाभारत का कौतुक कहते हैं सो सुनो, सात अक्षौहिणी सेना पांडवों की और ग्यारह अक्षौहिणी सेना धृतराष्ट्र के पुत्र कौरवों की ये ही दोनों सेनायें इकट्ठी होकर कुरुक्षेत्र में पहुंचीं, राजा धृतराष्ट्र

ने संजय से पूछा। धृतराष्ट्रोवाच—हे संजय! धर्म का क्षेत्र जो कुरुक्षेत्र है वहाँ मेरे और पांडवों के पुत्रों ने क्या किया, सो मुझसे कहो राजा का वचन सुनकर संजय बोला, संजयोवाच--हे राजा तेरे पुत्र दुर्योधन ने पांडवों की सेना को देखकर अपने गुरुदेव द्रोणाचार्य के निकट जाकर विनती की, हे आचार्य! देखो तो पांडवों की सेना का समूह और सेना की पंक्ति कैसी भली-भांति बनी है और द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न, जो तुम्हारा शिष्य है, कैसा बुद्धिमान है जिसने पांडवों की सेना की पंक्ति कैसी भली-भांति बनाई है। और जो पांडवों की सेना के मुख्य योधा हैं उनके नाम दुर्योधन द्रोणाचार्य को सुनाता है, इस सेना में गदाधारी भीमसेन धनुषधारी अर्जुन और राजा युयुधान राजा विराट राजा द्रुपद, महारथी धृतकेतु चेकितान और बड़ा बलवान काशी का राजा और

पुरजित कुन्ती भोज मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ शैव्य, युधामन्यु और विक्रान्त बड़ा बलवान उत्तमौजा, सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु और द्रौपदी के पांचों पुत्र सभी महारथी हैं। अब दुर्योधन अपनी सेना के मुख्य योधाओं के नाम और बल सुनाता है। हे आचार्य जी जो मेरी सेना के मुख्य योधा हैं, हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्यजी उनके नाम सुनो, प्रथम तो आप और भीष्मजी, कर्ण कृपाचार्यजी, समितिंजय अश्वत्थामा, विकरण और भूरिश्रवा जयद्रथ आदि से लेकर और भी योधा हैं, जिन्होंने मेरे निमित्त अपना जीवन त्याग दिया है और जो अनेक प्रकार के शस्त्र धारण करने वाले हैं, युद्ध करने में बड़े चतुर हैं। हमारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना है और पांडवों की सेना सात अक्षौहिणी है। हमारी सेना के अधिकारी और रक्षाकर्ता भीष्म हैं और

पांडवों की सेना का अधिकारी और रत्ताकर्ता भीमसेन है । अब दुर्योधन अपनी सेना से कहने लगे, जितने तुम हमारी सेना के लोग हो सो सभी भीष्म की रत्ता करने वाले हो, अब जितने शस्त्र आने के मार्ग हैं उन सब मार्गों से भीष्म की रत्ता करो, दुर्योधन के मुख से भीष्म आदि योधाओं ने यह वचन सुनकर उसको प्रसन्न करने के लिए कौरवों में जो बड़े वृद्ध भीष्म पितामह हैं उन्होंने प्रथमसिंह की तरह गरज कर अपना प्रतापवान् शंख बजाया, जिसके उपरान्त दुर्योधन की सारी सेना ने शंख बजाए । भेरी, ढोल और रण वाद्य, दमामे और गोमुखी इत्यादि बजाए । सेना ने अनेक प्रकार के बाजे एक साथ बजाए उन बजंत्रों का बड़ा भयंकर शब्द हुआ ! अब पांडवों की सेना नेजो बाजे बजाये उनको कहते हैं। प्रथम तो जिस रथपर श्रीकृष्ण भग-

वान् विराजमान हैं उस बड़े रथ की सारी सामग्री कंचन की है और रत्नों से जड़ित है। जैसे वर्षा ऋतु का मेघ गरजता है वैसे ही रथ के पहियों की आवाज है ऐसा रथ है। अब घोड़ों की शोभा कहते हैं। जैसे गौ का दूध होता है वैसा उनका सुन्दर रंग है और जैसे कार्तिक का फूला हुआ कमल होता है ऐसा सुन्दर घोड़ों का मुख है और बहुत सुन्दर है गर्दन जिनकी, सुन्दर हैं कान जिनके, सुन्दर हैं पूँछ जिनकी, स्वर्ण की घुघरी की जलरेव है और चरण में स्वर्ण के नूपुर पड़े हैं यह तो उन घोड़ों की शोभा है। ऐसे सुन्दर रथ पर सारथी भक्तवत्सल सत्य स्वरूप आनन्दकन्द श्रीकृष्ण भगवान्‌जी विराजमान हैं और योधा के स्थान पर अर्जुन भक्त विराजमान हैं उन्होंने भी अपने-अपने दिव्य शंख बजाए। प्रथम श्रीकृष्ण भगवान् ने अपना पांच-

जन्य नामक शंख बजाया और देवदत्त नामक शंख अर्जुन ने बजाया और पांडव नामक शंख भीमसेन ने बजाया सो भीमसेन कैसा है जिसका उदर बड़ा है और कमर भी बड़ी है। अनन्त विजय नामक शंख कुन्ती के पुत्र राजा युधिष्ठिर ने बजाया, संघोष नामक शंख नकुल ने बजाया और मणिपुष्प नामक शंख सहदेव ने बजाया। बड़े धनुष के धारण करने वाले काशी के राजा ने अपना शंख बजाया, महारथी शिखण्डी ने भी बजाया और धृष्टद्युम्न ने भी बजाया और राजा विराट ने भी अपना शंख बजाया और अजित जो किसी से जीता न जा सके ऐसा जो सात्यकि यादव है उसने भी बजाया, और राजा द्रुपद ने भी बजाया और द्रौपदी के पांचों पुत्रों ने भी बजाया और जितने भी पांडवों की सेना के राजे थे सबने शंख बजाए

और महाबाहु सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु ने भी बजाया। इन सबने अपने भिन्न-भिन्न शंख बजाए। उन शंखों के शब्द को सुनकर धृतराष्ट्र के पुत्रों के हृदय विदीर्ण हुए, अर्थात् हृदय फट गए। धरती और आकाश शब्दों से भर गए। इसके उपरान्त धृतराष्ट्र के पुत्र की सेना अर्जुन ने देखी, जब दोनों ओर की सेना के शस्त्र चलने लगे तब अपने धनुष का सिर ऊपर उठाकर पांडव अर्जुन हृषीकेश श्रीकृष्ण भगवान् से बोले हे अच्युत् अविनाशी पुरुष मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच में ले जाकर के खड़ा करो, तब मैं देखूं कि हमारे साथ युद्ध करने को कौन-कौन आये हैं। प्राणों को और धन को त्याग कर जो आये हैं, उनको मैं देखूंगा। संजयोवाच–राजा धृतराष्ट्र से बोला कि हे राजन्! हृषीकेश श्रीकृष्ण भगवान् से अर्जुन

ने जब यह वचन कहे तब भक्तवत्सल गोविंद ने घोड़ों को हांक कर अर्जुन का रथ दोनों सेनाओं के बीच भीष्म द्रोणाचार्य के सम्मुख ले जाकर खड़ा किया। भीष्म द्रोणाचार्य की दाईं बाईं ओर और भी योद्धा थे। तब श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुन से बोले-हे अर्जुन! तेरा रथ मैंने कौरवों की सेना के सम्मुख खड़ा किया है इनको देख। तब अर्जुन ने कौरवों की सेना में बहुत योद्धा देखे, उनमें पितामह देखे, गुरु देखे, मातुल (मामा) देखे पुत्र देखे, पौत्र देखे, सखा देखे, ससुर और मित्र देखे। इन दोनों सेनाओं में अपने ही कुटुम्बी देखकर अर्जुन को बहुत दया उपजी। तब अर्जुन दुःख के साथ ही श्रीकृष्ण भगवान् से बोले। अर्जुनोवाच-अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान् से कहने लगे-हे कृष्ण भगवान्! इस सेना में मैंने

सब अपने भाई बन्धु कुटुम्बी ही देखे हैं जो योधा रण में आए हैं उनको देखकर मेरा शरीर बहुत दुःख पाता है, मेरा मुख सूख गया है, मेरी देह कांप रही है और सब शरीर में पसीना आ गया है, मेरे रोम खड़े हो गए हैं और गांडीव धनुष मेरे हाथ से गिर रहा है और त्वचा जल रही है। मैं खड़ा भी नहीं हो सकता और मेरा मन भी भ्रम में पड़ गया है और हे केशव! मैं शकुन भी बुरे देखता हूं और मैं ऐसा निमित्त भी नहीं देखता यह विपरीत युद्ध है। हे केशवजी! इस युद्ध में भाइयों को मारने में मैं अपना कल्याण भी नहीं देखता। हे श्रीकृष्ण मैं अपनी जय भी नहीं चाहता और मुझको राज्य की भी इच्छा नहीं है और न सुख की है। हे गोविन्द राज्य किस काम का है और राज्य के भोग किस काम के हैं, जिनके सुखके निमित्त

कुटुम्ब के लोगों को मारकर राज मिलेगा। वहां सभी कुटुम्ब के योधा लोग एकत्र हुए हैं, प्राण और धन को त्याग कर युद्ध के निमित्त खड़े हैं। सो यह कौन-कौन हैं, गुरु हैं, पितामह हैं, पुत्र हैं, तात हैं, श्वसुर हैं, पौत्र हैं, साले और सम्बन्धी हैं। हे मधुसूदन ! इनको मारने की मुझको इच्छा नहीं इन पर मुझको बहुत दया आती है, हे धरती के धारण हारे श्रीकृष्ण भगवान्, मैं इनको मारकर त्रिलोक का राज्य पाऊं तब भी मैं न मारूँगा, भूमि के राज्य की तो बात ही कितनी है ? जनार्दनजी धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने से हमारा कल्याण नहीं, किन्तु इसके विपरीत होगा इनके मारने से, हमको बड़ा पाप लगेगा। यद्यपि यह महापापी भी हैं, तो भी मारने के योग्य नहीं हैं, प्रभुजी यह सभी पूजने योग्य हैं और भेंट योग्य हैं मैं इनको नहीं मारूँगा हे माधव !

सज्जन भाई बन्धु कुटुम्ब इनको मारने से हमको सुख कहाँ है, मुक्ति कहां! यद्यपि राज के लोभ से इनकी बुद्धि भ्रष्ट हुई है, यह धृतराष्ट्र के पुत्र, जो कुल नष्ट करने से दोष उपजते हैं, जो कुछ मित्र के साथ कपट करने से दोष उपजते हैं इसको नहीं समझते सो क्या इनकी तरह मैं भी नहीं समझता। जो कुल के नष्ट करने से पाप लगते हैं उन पापों को भली-भांति जानता हूँ अब जो पाप कुल के नष्ट करने से लगते हैं, उन पापों को अर्जुन भली भांति कहते हैं। हे जनार्दन! कुलका नाश करने से कुल के जो पुराने धर्म चले आये हैं उनका भी नाश होता है। कुल धर्म के नष्ट होनेसे कुल की स्त्रियां दुराचारिणी हो जाती हैं जिन स्त्रियों के वर्णसंकर संतान अर्थात् पराये पुरुष की संतान उपजती हैं। अब वर्णसंकर संतान हुई तब पिंड और जल पितरों को पहुंचने से रह

गया तो तिनके पितर स्वर्ग से गिर पड़ेंगे, इस कारण हे यदुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण भगवान्जी ! जिसने कुल को नष्ट किया उसने इतने पाप किये सो यह सब पाप कुल का नष्ट करने वाले के सिर पर होते हैं, फिर वह मनुष्य उन पापों का फल क्या पाता है, सो सुनो। वह प्राणी सदा नरक भोगता है न्यायशास्त्र में मैंने यह श्रवण किया है। अब अर्जुन पछताता है और हाथ को मलकर और फेरकर कहता है, हा हा देखो भाई मैंने कैसा पाप का उद्यम किया था, राज्य सुख के लोभ निमित्त अपने कुल का नाश करने लगा था। अब मैं अपने हाथ में शस्त्र न पकड़ूंगा और धृतराष्ट्र के पुत्रों के हाथ में शस्त्र होवेंगे और मैं उनके सम्मुख हूंगा वह मुझको मारेंगे इससे मेरा कल्याण होगा। संजयोवाच-संजय धृतराष्ट्र से कहते हैं। हे राजन्। अर्जुन ने यह वचन कहा

धनुषबाण हाथ से छोड़ दिया और शोक में मग्न होकर मूर्च्छित होकर बैठ गया ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे विषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

* प्रथम अध्याय का माहात्म्य *

एक समय कैलास पर्वत पर महादेव और पार्वती की आपस में गोष्ठी हुई, पार्वती ने पूछा हे महादेवजी ! आप अपने मन में किस ज्ञान से पवित्र हुए हो, किस ज्ञान के बल से आपको संसार के लोग शिवकर पूजते हैं और आपके कर्म यह दिखाई देते हैं, मृगछाला ओढे, अंगों में श्मशान की विभूति लगाये, गले में सर्प और मुंडों की माला पहिन रहे हो, इनमें तो कोई कर्म पवित्र नहीं सो आप मुझे वह ज्ञान सुनाओ जिससे आप पवित्र हो। तब श्री महादेव ने उत्तर दिया। श्रीमहादेवोवाच—महादेवजी बोले--प्रिये सुनो ! जिस गीता के ज्ञान को मन में धारण करने से मैं पवित्र हूं उस ज्ञान से मुझे बाहर के कर्म नहीं व्यापते। तब पार्वती ने कहा हे भगवान् जिस ज्ञान की आप स्तुति करते हैं उस ज्ञान के

सुनने से कोई कृतार्थ भी हुआ है ? तब श्री महादेवजी ने उत्तर दिया, इस ज्ञान को सुनकर बहुत जीव कृतार्थ हुए हैं और आगे भी होंगे। मैं एक पुरानी कथा सुनाता हूं तू सुन--एक समय पाताल लोक में शेष नाग की शैया पर श्री नारायण-जी नेत्र बन्दकर अपने आनन्द में मग्न थे, उस समय भगवान् के चरण दबाते हुए श्री लक्ष्मीजी ने पूछा हे प्रभु ! निद्रा और आलस्य उन पुरुषों को व्यापता है जो तामसी हैं फिर आप तो तीनों गुणों से परे हो, श्री नारायण एवं वासुदेव हो, आप नेत्र जो बन्द किये हो यह मुझको बड़ा आश्चर्य है श्री नारायणजी बोले—हे लक्ष्मीजी ! मुझको निद्रा आलस्य नहीं व्यापता एक शब्द रूपी जो भगवद्गीता है उसमें जो ज्ञान है उसके आनन्द में मग्न रहता हूं जैसे २५ अवतार मेरे आधार रूप हैं वैसे ही ये गीता शब्द रूपी अवतार है। इसके पाँच अध्याय मेरा मुख हैं, पाँच अध्याय मेरी भुजाएं हैं, पाँच अध्याय मेरा हृदय और मन हैं, सोलहवां अध्याय मेरा उदर है, सत्रहवां अध्याय मेरी जांघें हैं, अठारहवां अध्याय चरण हैं और जितने श्लोक हैं सो मेरी नाड़ियां हैं और जो अक्षर हैं मेरे रोम हैं, ऐसा जो मेरा शब्दरूपी गीता ज्ञान है उसके अर्थ को मैं हृदय में विचारता हूं और बहुत

आनन्द पाता हूं। तब लक्ष्मीजी कहने लगीं हे नारायण! जब श्री गीताजी का ऐसा ज्ञान है तो उसको सुनकर कोई जीव कृतार्थ भी हुआ है? तब श्रीनारायण-जी ने कहा हे लक्ष्मी! गीता ज्ञान को सुनकर बहुत जीव कृतार्थ भये हैं सो तू सुन। श्री नारायणोवाच–शूद्र वर्ण का एक प्राणी था जो चांडालों के कर्म करता था और तेल-लवण का व्यापार करता था। उसने एक बकरी पाली। एक दिन वह बकरी चराने को वन में गया और वृक्षों के पत्ते तोड़ने लगा। वहाँ साँप ने उसको डस लिया, तुरन्त ही मर गया। मर कर उस प्राणी ने बहुत से नरक भोगे फिर बैल की योनि पाई। उस बैल को एक भिक्षुक ने मोल लिया। भिखारी उस बैल पर चढ़ कर सारे दिन मांगता फिरता जो कुछ भिक्षा मांग कर लाता वह अपने कुटुम्ब के साथ मिलकर खाता। बल सारी रात द्वार पर बँधा रहता, उसके खाने-पीने की कोई खबर न लेता। कुछ थोड़ा-सा भूसा उसके आगे डाल छोड़ता। इस प्रकार कई दिन बीते तो वह बैल भूख का मारा गिर पड़ा, मरने लगा पर उसके प्राण नहीं छूटते थे। तब नगर के लोग देखते कोई तीर्थ का फलदे, कोई व्रत का फलदे पर उस बैल के प्राण छूटते नहीं। एक दिन एक गणिका आई। उसने लोगों से पूछा यह भीड़

कैसी है तो उन्होंने कहा इसके प्राण छूटते नहीं अनेक पुण्यों का फल दे रहे हैं तो भी इसकी मुक्ति नहीं होती तब गणिका ने कहा मैंने जो कर्म किया उसका फल मैंने इस बैल के निमित्त दिया। इतना कहते ही उस बैल की मुक्ति भई। उस बैल ने ब्राह्मण के घर जन्म लिया। पिता ने उसका नाम सुशर्मा रखा। बड़ा होने पर पिता ने उसको पढ़ाया, उसको पिछले जन्म की सुध रही। उसने एक दिन मन में सोचा कि जिस गणिका ने मुझे बैल की योनि से छुड़ाया था उसके दर्शन करूं। विप्र चलता-चलता गणिका के घर गया और कहा तू मुझे पहचानती है, गणिका ने कहा मैं नहीं जानती तू कौन है, क्योंकि तू विप्र मैं वेश्या। तब विप्र ने कहा मैं वही बैल हूं जिसको तूने अपना पुण्य दिया था तब मेरी मुक्ति भई। अब मैंने विप्र के घर जन्म लिया है तू अपना पुण्य बता। वेश्या ने कहा मैंने अपनी याद में कोई पुण्य नहीं किया पर मेरे घर एक तोता है वह सवेरे कुछ पढ़ता है, मैं उसके वाक्य सुनती हूं। उसी पुण्य का फल मैंने तेरे निमित्त दिया था। तब उस विप्र ने तोते से पूछा कि तू सवेरे क्या पढ़ता है? तोते ने कहा मैं पिछले जन्म में विप्र का पुत्र था, पिता ने मुझे गीता के पहले अध्याय का पाठ पढ़ाया था। एक दिन मैंने

अज्ञानवश गुरु का अपमान किया तब गुरुजी ने मुझे शाप दिया कि तू तोता हो जा। तब मैं तोता बना, एक फन्दक पकड़ ले गया, एक विप्रने मुझे मोल लिया वह विप्र भी अपने पुत्र को गीता का पाठ पढ़ाता था। तब मैंने भी वह पाठ सीख लिया। एक दिन ब्राह्मण के घर चोर आए कुछ धन प्राप्त न हुआ, मेरा पिंजरा उठा ले गये, उन चोरों की यह गणिका मित्र थी। मुझे इसके पास ले आये सो मैं नित्य गीता जी के पहले अध्याय का पाठ करता हूं, यह सुनती है पर जो मैं पढ़ता हूं इस गणिका की समझ में नहीं आता। वही पुण्य तेरे निमित्त दिया था सो श्री गीताजी के पहले अध्याय के पहले पाठ का फल है। तब विप्र ने कहा-हे तोते तू भी विप्र है मेरे आशीर्वाद से तेरा कल्याण हो। सो हे लक्ष्मी इतना कहने से तोते की मुक्ति भई। उस गणिका ने भले कर्म ग्रहण किये, नित्य प्रति स्नान कर गीता के प्रथम अध्याय का पाठ करती। इस तरह भले विप्र, क्षत्रिय, वैश्य अतीत उस वेश्या की पूजा करने लगे और विप्र अपने घर को गया। श्री नारायणजी ने कहा—हे लक्ष्मी! जो कोई भी गीता का पाठ करे या श्रवण करे तिसको भी मुक्ति मिलेगी। यह पहले अध्याय का माहात्म्य मैंने तुमसे कहा।

॥ इति श्री पद्मपुराणे कृष्णा-अर्जुन संवादे उत्तराखंडे गीता माहात्म्य नाम प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

संजय राजा धृतराष्ट्र से कहने लगे—इस प्रकार दया से परिपूर्ण अश्रु से भरे व्याकुल नेत्रों से देखते हुए दुखित हृदय अर्जुन से मधुसूदन कहने लगे—हे अर्जुन! ऐसे विकट समय में तुझे यह मोह कहां से आया ऐसा मोह क्षुद्र पुरुषों को होता है इससे न परलोक में स्वर्ग मिलता है और न संसार में कीर्ति होती है। हे पार्थ तू कायर मत बन तुझे यह उचित नहीं है। शत्रुसूदन! हृदय से नीच बुद्धि का त्याग उठ खड़ा हो। अर्जुन ने कहा हे मधुसूदन मैं संग्राम में भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य आदि गुरुओं से युद्ध किस प्रकार करूंगा? हे शत्रु निकन्दन! ये दोनों पूजा के योग्य हैं इन पर बाण कैसे चलाऊँ? हे कृष्ण

भिक्षा का अन्न खाकर समय बिताते तो यह भी बहुत उत्तम है पर गुरुजनों को मारकर रुधिर से लिप्त भोगों का भोगना उत्तम नहीं है। जो हम अधर्म करने को तत्पर हो भी जायँ तो हमें यह नहीं मालूम कि कौन बली है। वे हमको जीतेंगे या हम उन्हें, जिनको मार कर हम जीना नहीं चाहते हैं वे धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे सामने खड़े हैं, इनको मारने से हमारा जीना भला नहीं। कार्पण्य है और कुल का क्षय होना दोष है। इन दोनों बातों से मेरा स्वभाव बिगड़ गया है। अब मैं ऐसा मूढ़ हो गया हूं कि मुझे धर्म-अधर्म का कुछ ज्ञान नहीं। इसलिए मैं आपसे पूछता हूं कि युद्ध करना, भिक्षा मांगकर निर्वाह करना इन दोनों में से कौन-सी बात श्रेष्ठ है। इनमें जो उचित हो सो कहिये। मैं आपका शिष्य हूं आपकी

शरण आया हूं। जिस प्रकार मेरा धर्म बचे और जो निश्चय कल्याण करने वाला उपाय हो वही कहिए। हे प्रभुजी! सम्पूर्ण पृथ्वी का निष्कंटक राज्य पाऊं और देवलोक जो स्वर्ग है, उसका अधिपति बन जाऊं तो भी मुझे कोई ऐसा उपाय नहीं सूझता है जिससे इन्द्रियों को दुखानेवाला मेरा यह शोक दूर हो जाय। संजय ने कहा-हे धृतराष्ट्र! शत्रुओं को सन्ताप देने वाला अर्जुन श्रीकृष्ण से यह कहकर चुप हो गया कि अब मैं युद्ध नहीं करूँगा। श्रीकृष्णजी दोनों सेनाओं के मध्य में खड़े अर्जुन को शोकयुक्त देख कुछ हँसते हुए कहने की इच्छा से विचारने लगे कि अर्जुन को देह और आत्मा के अविवेक से शोक उत्पन्न हुआ सो जब तक इसको ज्ञान नहीं होगा तब तक शोक नहीं मिटेगा। यह सोचकर श्रीकृष्णजी कहने लगे कि हे अर्जुन!

जो विवेकी पुरुष हैं वे किसी की चिन्ता नहीं करते पर तुम सोच करते हो और पंडितों के समान बातें बनाते हो, यह तुम्हारा हठ ठीक नहीं है। विद्वान् लोग जीते और मरे हुओं का सोच नहीं करते हैं,क्योंकि जीना-मरना दोनों ही मिथ्या हैं। हे अर्जुन! क्या ये सब पहले नहीं थे और क्या आगे नहीं होंगे ? यह बात नहीं है। इसके पहले भी मैं था और तुम भी थे और यह सब राजा भी थे आगे भी हम तुम और ये सब राजा होवेंगे। हे अर्जुन! जैसे इस देह की बाल्यावस्था और युवावस्था और वृद्धावस्था तीन अवस्थाएं होती हैं उसी प्रकार जीव भी इस देह को छोड़कर दूसरी देह पाता है, इसमें विवेकी पुरुषों को मोह करना उचित नहीं है। कुन्तीनन्दन! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जो इन्द्रियों के विषय हैं ये सरदी, गरमी और सुख दुःख के देने वाले हैं

जिनको इन्द्रियों के सुख और दुःख अपनी निश्चलता से चलायमान न कर सकें तिन्हीं पुरुषों ने अमृतपान किया है इससे हे अर्जुन ! इनको सहना उचित है। हे अर्जुन ! जिनको यह इन्द्रियों के विषय नहीं सतातेहैं और जो सुख दुःखको समान जानते हैं वे मोक्ष के अधिकारी होतेहैं। हे अर्जुन ! सुख दुःखादि नाशवान् पदार्थ सभी अनित्य हैं और सत् जो आत्मा है उनको तू अविनाशी जान। तत्त्वदर्शियों ने भाव और अभाव इन दोनों का तत्त्व देखा है, जो सब में व्यापक है वह अविनाशी है। इस अविनाशी का नाश कोई भी नहीं कर सकता। हे भारत ! यह देह विनाशी है इसमें जो जीव रहता है वह अविनाशी और परिणामरहित है। फिर इस अनित्य देह के वास्ते अपना धर्म क्यों छोड़ता है ? इससे हे अर्जुन ! युद्ध करके यदि कोई कहे कि अमुक को मैंने माराहै सो

वे दोनों कुछ नहीं समझते न कोई मरा और न किसी ने मारा है आत्मा अमर है। इस अत्मा को न कोई मार ही सकता है और न यह मरता ही है! तू जो भीष्मपितामह के मरने का सोच करता है वह व्यर्थ है, क्योंकि आत्मा तो किसी तरह मरता नहीं केवल शरीर का नाश होता है इससे खड़े होकर युद्ध करो। हे अर्जुन! यह आत्मा न कभी जन्म लेता है न मरता है न कभी पहले हुआ था और न आगे होगा। यह आत्मा जन्मरहित है, नित्य है सदा एकरस है और सनातनपुरातन है, शरीर के नाश होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता। जो इस आत्मा को अविनाशी, नित्य, अजन्मा, अविकारी समझता है, वह किसको मरवाता और किसको मारता है। हे अर्जुन! जैसे मनुष्य पुरातन वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्रों को धारण कर

लेता है, तात्पर्य यह है कि जैसे पुराने वस्त्रों को त्यागने में कुछ कष्ट नहीं होता वैसे ही देह के त्यागने में भी कुछ कष्ट नहीं होना चाहिये। हे अर्जुन ! इस आत्मा को शस्त्र छेद नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकता, जल इसे भिगो नहीं सकता और पवन सुखा नहीं सकता है। शस्त्र इसे काट नहीं सकता, क्योंकि यह नित्य, सर्वव्यापक, स्थिर, अचल और शाश्वत है। हे अर्जुन ! यह आत्मा इन्द्रियों से परे है। मन से विचार के योग्य नहीं है। ऐसे विकार रहित आत्मा को जानकर इसके लिए सोच नहीं करना चाहिए। हे अर्जुन ! जिसने जन्म लिया है वह अवश्य मरेगा और जो मरा है वह अवश्य जन्म लेगा। इससे उपायरहित बातों के लिए तुम्हारा सोच करना व्यर्थ है और तू किसी भूत प्राणी की चिन्ता मतकर

हे भारत ! मनुष्यादि प्राणी जन्म लेने से पहले दिखाई नहीं देते हैं और न मरने के बाद प्रकट होते हैं। केवल जन्म-मरण के बीच वाली मध्यावस्था में दीख पड़ते हैं। तो अब सोच करने की बात ही क्या है ? हे अर्जुन ! कोई तो इस आत्मा को आश्चर्य होकर देखते हैं, कोई आश्चर्य से कहते और आश्चर्य से सुनते हैं और कोई इसे सुनकर नहीं समझते। यह आश्चर्य क्या है, जिसका कुछ निर्णय न किया जाय कि यह क्या है। हे भारत ! सब की देह में जो आत्मा है वह अविनाशी है फिर इनके लिए तुम्हारा सोच करना वृथा है। फिर जो तू अपने क्षत्रिय धर्म पर विचार करे तो भी तुझे डरना नहीं चाहिए, क्योंकि क्षत्रिय के लिए युद्ध से उत्तम कोई धर्म नहीं है। हे पार्थ ! यह समय अपने आप उपस्थित हो गया है। युद्ध काल में स्वर्ग

का द्वार खुल जाता है। पुण्यवान् क्षत्रियों को ही यह युद्ध समागम मिलता है, अर्थात् जो क्षत्रिय युद्ध में मरते हैं वे सीधे स्वर्ग को जाते हैं। जो तू क्षत्रिय होकर संग्राम नहीं करेगा तो तेरा धर्म भी छूट जायगा और कीर्ति भी जाती रहेगी और तुझे पाप लगेगा। मनुष्य तुझको सदा बुरा कहेंगे। देखो प्रतिष्ठित पुरुषों को अपकीर्ति मरने से भी बुरी है। ये सब महारथी योधा तुझको रणभीरु कहेंगे। जो तुझको बड़ा मानते हैं उनकी दृष्टि में तू बलहीन हो जायेगा और यही तेरे तुझ से अनकहनी बातें कहेंगे और तेरे बल-पौरुष की सदा निन्दा किया करेंगे, अब बताओ इससे बड़ा दुःख कौन-सा है ? हे कौन्तेय ! तू इस संग्राम में मारा जायेगा तो सीधे स्वर्ग को जायेगा और जो जीतेगा तो पृथ्वी का राज्य भोगेगा तेरी दोनों तरह जीत है इससे दृढ़ विचार कर तू

युद्ध को खड़ा हो जा। सुख-दुःख, हानि-लाभ एक समान जानकर खड़ा हो जा। अर्जुन! जो कुछ मैंने तुझसे कहा है वह सांख्य शास्त्र के अनुसार आत्मा और देह का तत्त्व समझाया है, अब बुद्धि योग को कहता हूं सुन। इस बुद्धि योग के सुनने से सुख दुःखादि जो कर्म बन्धन हैं उससे छूट जाओगे। अर्जुन! इस कर्म-योग में प्रारम्भ का नाश नहीं होता है, अर्थात् प्रारंभ होनेपर समाप्त न भी होय तो उसका फल मिलता है, न इसमें कुछ पाप है। इस धर्म का लेशमात्र भी पालन करना जन्म-मरणादि रूपी बड़े भयों से रक्षा करता है। हे कुरुनन्दन! व्यवसायात्मिका बुद्धि एक ही है, अर्थात् जिनकी बुद्धि निश्चल हो गई है, वे मोक्ष के साधन रूप इस कर्म योग में लग जाते हैं, जिनका मन विचलित है उनकी बुद्धि अनेक हैं, अर्थात् तरह-तरह के झगड़ों में फँस जाते

हैं और उनकी शाखा भी अनेक है। हे पार्थ यद्यपि विवेकी पुरुष इन्द्रियों को जीतने का प्रयत्न करता है तो भी इन्द्रियां बलवान हैं। मन को ठौर से चला देती हैं। इससे हे अर्जुन! स्वर्गादि प्राप्ति की कामना जिनको है ऐसे सकाम पुरुष भोग और सुख की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के यज्ञादिक कर्मों को करते हैं क्योंकि यह क्रिया जन्म और कर्म फल को देने वाली है। हे अर्जुन भोग और ऐश्वर्य में जिनके मन फंस गये हैं और कर्म फलों को बताने वाली वाणी से जिनके चित्त हरे गये हैं उनका मन निश्चयात्मक बुद्धि में स्थिर नहीं होता है और वे सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों के विषय हैं। हे अर्जुन तुम इन तीनों गुणों को छोड़ सुख-दुख, लाभ-हानि को त्याग निर्द्वन्द हो जाओ और नित्य ही सत्त्व में स्थित हो अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति

और प्राप्त की रक्षा में चित्त लगाओ, केवल आत्म-स्वरूप में सावधान हो जाओ। हे अर्जुन ! जैसे तालाब, सरोवर आदि पानी से भरे हुए हैं, मनुष्य अपने प्रयोजन भर उसमें से जल ले लेता है ऐसे ही ब्रह्मवेत्ता सम्पूर्ण वेदों में से अपने प्रयोजन भर ज्ञान ले लेता हैं। कर्म में तेरा अधिकार है फल में कभी भी नहीं। जो तू कर्म करे उसका हेतु अथवा उसके फल का भोगने वाला भी मत हो। हे धनंजय ! सब संग को त्याग कर योग में स्थित हो, कर्म कर हार-जीत समान भाव से देख, दोनों की समानता ही योग है। हे अर्जुन ! बुद्धि योग से कर्म नीच है इसलिए बुद्धि का आश्रय लेकर कर्म करो। जो विवेकी पुरुष हैं सो किसी कर्म का फल नहीं चाहते। जो चाहते हैं सो नीच मति हैं। जो बुद्धि योग से कर्म करता है, वह इसी संसार में संचित पाप

पुण्यों को त्याग देता है। इससे तुम बुद्धियोग में प्रवृत्त होओ। इस प्रकार का योग ही कर्मों में कुशलकारक है। जो पण्डित जन बुद्धियोग युक्त हैं वे कर्मफल को त्याग कर जन्मादि बन्धन से छूटकर निश्चय परमपद को प्राप्त होते हैं। जब तेरी बुद्धि इस मोहरूपी सुख-दुःख से पार होकर अत्यन्त शुद्ध हो जाएगी तब तू विरक्त हो जायगा। अनेक विषयों के सुनने से जो तेरी बुद्धि अस्थिर हो गई है वह जब मेरे वचनों में स्थिर हो जायेगी तब तू योग पावेगा। यह सुनकर अर्जुन ने पूछा--हे सर्वान्तर्यामिन् केशव ! समाधि में स्थित पुरुष-जिसकी बुद्धि स्थिर हो गई है उसके लक्षण कृपाकर कहो। वह किस तरह बोलता है, बैठता है, चलता है, फिरता है,। श्री भगवान् बोले-हे अर्जुन ! जिसकी कामना किसी बात पर नहीं उठी अपनी आत्मा

को पाकर सन्तुष्ट है उसकी निश्चल बुद्धि जान। जिसका मन दुःख पड़ने से घबड़ाता नहीं है, जिसे सुख में प्रसन्नता नहीं होती राग, भय क्रोध जिसके पास नहीं आते हैं वही निश्चल बुद्धि है। हे अर्जुन ! जिसका किसी पदार्थ से स्नेह नहीं है और जो किसी शुभ वस्तु से हर्षित नहीं होता और अशुभ प्राप्ति में शोक नहीं करता न किसी से राग और द्वेष है, उसकी बुद्धि निश्चल होती है। जैसे कछुआ अपने सब अङ्गों को सिकोड़ लेता है वह मनुष्य है उसी तरह अपनी इन्द्रियों को उसके विषयों से समेट लेता है। उसकी बुद्धि निश्चल होती है निराहार रहने से विषयासक्ति दूर हो जाती है। पर इच्छा बनी रहती है। निश्चल बुद्धि पुरुष की परमात्मा के दर्शन से विषयवासना भी दूर हो जाती है। हे कौन्तेय ! ये इन्द्रियां बड़ी प्रबल और लोभ

कारक हैं। यत्न करते-करते ज्ञानी पुरुष के मन को भी हठपूर्वक हर लेती हैं, अर्थात् इन्द्रियों को रोकना कठिन है। जो योगी इन सब इन्द्रियों का दमन कर आत्मा में निष्ठा कर लेवे और जिसके वश में इन्द्रियां हैं, वे ही निश्चल बुद्धि हैं। इन्द्रियों को वशीभूत किये बिना मन में विषयों का चिन्तवन बना रहता है। चिंतवन करने से मन में आसक्ति उत्पन्न हो जाती है तथा आसक्ति से कामना, कामना से क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से बुद्धि भ्रम में पड़ जाती है उससे बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि नष्ट होनेपर प्राणी का स्वयं नाश हो जाता है। वह पुरुष जिसने अपना मन वश में कर लिया है वह राग-द्वेष से रहित होकर इन्द्रियों के विषयों का सेवन करता हुआ भी शान्ति पाता है। हे अर्जुन ! शान्ति के प्राप्त होने पर पुरुष के सब दुःख मिट

जाते हैं और उस शान्त चित्त वाले पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही स्थिर हो जाती है। जिस पुरुष ने अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं किया है, उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती और आत्मा के ध्यान का अधिकारी नहीं हो सकता फिर ध्यान रहित को शान्ति नहीं और बिना शान्ति के परमानन्द सुख नहीं मिलता है। मन विषयों को भोगने वाला इन्द्रियों के पीछे लगा फिरता है और फिर वह बुद्धि को खींचकर ऐसे ले आता है जैसे जल में वायु नाव को घुमाती है। महाबाहो! इसलिए जिसने इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर वश में कर लिया है उसी की बुद्धि स्थिर है। जिसमें सम्पूर्ण प्राणी सोते हैं वह आत्मनिष्ठावान् पुरुषों का दिन है जिसमें सब प्राणी जागते हैं वह उन पुरुषों की रात्रि है, क्योंकि विषयासक्त पुरुषों को आत्मतत्त्व ज्ञान नहीं

है इस विषय में उन्हें कुछ नहीं सूझता है। इससे उनके लिये यह रात्रि रूप है और संयमी पुरुषों को यह आत्मतत्त्व दिनके समान है इसी तरह सांसारिक विषयों का सुख प्राणी के लिए दिन है और योगियों को रात्रि के समान है, क्योंकि वह विषय-भोगों को कुछ नहीं जानते हैं। हे अर्जुन ! जैसे समुद्र में पूर्ण रीति से जल भरा हुआ है और उसमें बहुत-सी नदी और नालों का जल चारों ओर से आकर गिरता है, परन्तु तो भी वह अचल और प्रतिष्ठित रहता है, अर्थात् अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता है। इसी तरह विवेकी पुरुषों में भी सब कामनाएं लीन होती हैं और उनको शान्ति बनी रहती है परन्तु कामना की इच्छा करने वाले को शान्ति नहीं मिलती है। जो पुरुष समस्त काम-नाओं को छोड़कर निस्वार्थ होकर विचरता है और ममता तथा

अहंकार को छोड़ देता है वही शांतिको पाता है। हे अर्जुन! यह मैंने तुमसे ब्रह्मज्ञान की निष्ठा कही है। इस ब्रह्मज्ञान की निष्ठा को पाकर फिर सांसारिक माया के मोहसे नहीं मोहा जाता और अन्त समय में जो क्षणभर भी इस ब्रह्मज्ञान निष्ठा में स्थित हो जाता है वह मोक्षपद को प्राप्त होता है।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे कृष्णार्जुन-संवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥



दूसरे अध्याय का माहात्म्य

लक्ष्मीजी ने कहा प्रथम अध्याय का माहात्म्य जो आपने सुनाया उसके सुननेसे मेरी इच्छा अब दूसरे अध्यायके माहात्म्य को भी सुनने की हो रही है। नारायणजी ने कहा-हे प्रिये! सुनो। दक्षिण दिशा में इन्द्रपुर नाम का नगर था उसमें एक विष्णुशर्मा नाम का ब्राह्मण रहता था। वह वेदशास्त्र जानने वाला

बड़ा सदाचारी था। जो कोई साधु महात्मा ब्राह्मण के घर आते उनका अतिथि-सत्कार करता और धर्म के विषय में प्रश्न करता था। एक दिन उसके द्वार पर विचरते हुए एक ब्रह्मचारी आए। ब्राह्मण ने उनकी बहुत सेवा की और विनयपूर्वक कहा—हे महात्मन्! मुझे आप ब्रह्मज्ञान के पाने का उपदेश करो जिससे मेरा कल्याण हो। ब्रह्मचारी ने कहा-हे ब्रह्मज्ञानी! आपने अच्छा किया है उसका उत्तर गीता के दूसरे अध्याय में है वह मैं आपसे कहता हूं। उसको जानने से तुम्हारा कल्याण होगा। विष्णुशर्मा ने कहा-हे ब्रह्मचारीजी! इस दूसरे अध्याय के सुनने से कोई पहले भी मुक्त हुआ हो तो उसका वृत्तान्त सुनाइये। ब्रह्मचारीजी बोले मैं तुम्हें एक पुरातन कथा सुनाता हूं। एक वन में जहां मैं तप करता था, वहां एक अबाली नाम का चरवाहा प्रति दिन बकरियों को चराने आया करता था। एक दिन मैं भजन कर रहा था। थोड़ी दूर एक ओर सिंह बैठा था और पास ही में मृगों का झुण्ड किलोल कर रहा था। उसी समय अबाली बकरियों को बन में चरनेके लिए छोड़ कर मेरी कुटी पर आया। वहां सिंह को बैठा पाकर बहुत डरा और चकित होकर सोचने लगा कि मृगों के बच्चों को

सिंह क्यों नहीं पकड़ता। इतना सोचकर वह डर से चीखने लगा। मेरी समाधि को खुली देखकर उसने पुकारा। जब मेरी दृष्टि उस पर पड़ी उस समय वह कांप रहा था। उस अबाली को पास आने के लिए कहा यद्यपि पहले उसने आने की इच्छा नहीं की, परन्तु मेरे उत्साह दिलाने पर वह मेरे पास आया और प्रणाम कर बड़ी नम्रता से पहले अपनी सम्पूर्ण अवस्था कह सुनाई तब कहा कि महात्मा जी ! यह सिंह इन हरिणों को क्यों नहीं खाता ! मैंने उससे कहा कि यह अहिंसा व्रत का फल है जो मनुष्य अहिंसा व्रत पालन करता है, उसके पास आने वाले हिंसक जीव भी वैर-भाव को छोड़ देते हैं। इसलिये जो कुछ तुम देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुए हो वह मेरे अहिंसा व्रत का प्रभाव है। यह सुन अबाली ने कहा कि हे देव ! मुझे ऐसी शक्ति दीजिये, जिससे मुझे किसी से डर न हो। तब मैंने उससे कहा कि तुम गीता के दूसरे अध्याय का पाठ सुनो। ऐसा कह कर मैंने ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों का वर्णन जैसे गीता में है कह सुनाया। अबाली दूसरे अध्याय का माहात्म्य सुनकर पूर्ण ज्ञानी हो गया और तत्काल ही आकाश से विमान आये और उसको वैकुण्ठ को ले गये और वह अधम देही को छोड़ दिव्य

शरीर को प्राप्त हुआ । हे नरपुङ्गव ! यद् तुम भी इस अध्याय को ध्यानसे पढ़ो, सुनकर उस पर आचरण करोगे तो अवश्य परमपद को पहुंचोगे । हे लक्ष्मीजी ब्रह्मचारी ने गीता के दूसरे अध्याय का माहात्म्य विष्णुशर्मा को सुनाया जिसको सुनकर वह मुक्त हुआ और देव देही पाकर वैकुण्ठ को गया ।

इति श्रीपद्मपुराणे सतीईश्वरसंवादे उत्तराखंडे गीतामाहात्म्य
नाम द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

अर्जुन ने कहा-हे जनार्दन ! जो आप कर्म योग से ज्ञान योग को श्रेष्ठ बताते हो तो यह जो भयानक कर्म, युद्ध है इसमें मुझको क्यों जोड़ते हो और जो तुमने कभी कुछ और कभी कुछ मिली हुई अनेक प्रकार की बातें कही हैं इससे मेरी बुद्धि और भी बड़े सन्देह में पड़ गई । आपकी इन बातों से मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि मैं क्या करूँ । इससे अब एक बात निश्चय

करके कहो जिससे मेरा कल्याण हो। यह सुन श्रीकृष्णजी बोले हे अर्जुन! मैंने जो प्रथम इस संसार में तत्त्व ज्ञान निष्ठा और कर्म योग निष्ठा कहा है, उसमें सांख्य वालोंको तत्त्व ज्ञाननिष्ठा और योगियों को कर्मयोग निष्ठा है, कर्म किये बिना मनुष्य निष्कर्म जो तत्त्वज्ञान है उसको नहीं पाता है, क्योंकि केवल संन्यास ले लेने ही से कर्म करते-करते चित्त शुद्ध किये बिना सिद्धि प्राप्त नहीं हो जाती। किसी अवस्था में कोई प्राणी शरीर, मन, वचन से कर्म किये बिना क्षणभर भी नहीं रह सकता, क्योंकि प्रकृति के जो राग द्वेष गुण हैं उनके वशीभूत होकर सब प्राणियों को कर्म करना पड़ता है। जो हाथ-पांव आदि कर्म करने वाली इन्द्रियों को वशीभूत करके भगवान् के स्मरण के बहाने से मन में इन्द्रियों का ध्यान करता रहता है, वह मूढ़ मिथ्याचारी कहलाता है। हे

अर्जुन ! तू जो कोई नेत्र आदि इन्द्रियों को मन से रोककर अर्थात् अपने सब कर्मों में अपने को भगवान् के अधीन जान कर्म इन्द्रियों से कर्म योग का आरम्भ करता है और फल की इच्छा करता है, वही श्रेष्ठ है। इससे हे अर्जुन ! तू निश्चय करके कर्म कर। कर्म न करने से कर्म करना श्रेष्ठ है और कर्म करना छोड़ देने से तेरे शरीर का निर्वाह होना भी कठिन हो जायगा। विष्णु भगवान् के आराधनार्थ जो कर्म हैं उन्हें छोड़ कर जितनी वस्तु हैं वे सब बन्धनरूप हैं इसलिए हे अर्जुन ! विष्णु भगवान् की आराधना के निमित्त तू निष्काम होकर कर्म करने में प्रवृत्त हो। परमात्मा ने सृष्टि रचना के समय यज्ञ के साथ प्रजा को रचकर कहा कि इससे तुम्हारी वृद्धि होगी और यही तुम्हारे सब मनोरथों को पूर्ण करेगा। तुम यज्ञादि कर्मसे देवताओं और महापुरुषभग-

वान् का पूजन करो। तब वे देवता भी वर्षा आदि से अन्नादि की वृद्धि कर तुम्हारी वृद्धि करेंगे। इस तरह आपस में एक दूसरे की वृद्धि करने में तुम सब का बहुत भला होगा, यज्ञों से पूजित देवता तुमको मनवांछित फल देवेंगे और जो कोई इनके दिए भागों को इनके निमित्त दिये बिना भोगेंगे वे चोर हैं। हे अर्जुन! जो बलिवैश्वदेवादि पंच यज्ञ करके भोजन करते हैं व महात्मा गृहस्थों के पांच पापों से छूट जाते हैं और जो कोई अपने लिए भोजन बनाते हैं और बिना देवताओं के अर्पण किये आप ही भोजन कर लेते हैं वे प्राणी सब पापों को भोगते हैं। हे अर्जुन! सब शरीरधारी प्राणी अन्न से होते हैं प्रथम अन्न पेट में जाता है तब वह रस रूप हो वीर्य रक्त की वृद्धि कर प्राणियों की उत्पत्ति करता हैं, वह अन्न मेघ से होता है, मेघ यज्ञ से होता है और यज्ञ

कर्म से होता है, कर्म की उत्पत्ति वेद से होती है वेद पारब्रह्म से उत्पन्न होते हैं। ब्रह्म सर्वव्यापक और यज्ञ में सदैव रहता है इससे यज्ञादि कर्म अवश्य ही करना चाहिए। इन कर्मों के करने से संसार का कल्याण होता है ईश्वराधना रूप यज्ञादि कर्म में जो प्रवृत्त नहीं होते हैं केवल इन्द्रियों के विषय भोग में लगे रहते हैं उनका जीवन निष्फल है। जिसको आत्मा से प्रीति है, जिसको आत्मा ही तृप्ति है और जो आत्मा में ही लाभकारी सन्तुष्ट भया है जिसके इन्द्रिय विषयों में आसक्त नहीं है ऐसे तत्त्वज्ञानी पुरुष को कर्म नहीं करना चाहिये। उनका किसी भले कर्म किये का फल नहीं, और न करने से कुछ पाप भी नहीं है, क्योंकि ज्ञानी अहंकार रहित होता है इससे उसे कुछ विधिनिषेध नहीं है और ज्ञानी को प्राणीमात्र का आश्रय लेने

की भी कुछ आवश्यकता नहीं है। हे अर्जुन! फल की अभिलाषा को छोड़ दो नित्य नैमित्तिक कर्म हैं उन्हें निरन्तर करो। जो फल की अभिलाषा को छोड़ कर्म करते हैं उन्हें मोक्ष अवश्य मिलता है। सन्ध्या वन्दनादि नित्य कर्म हैं और पुत्रादि जन्म होने के निमित्त जो कर्म किये जाते हैं उनको नैमित्तिक कर्म कहते हैं। राजा विदेह जो ऐसे ज्ञानी हो गये हैं उनको भी कर्म करने से सिद्धि मिली थी। इससे तू अपने को बड़ा ज्ञानी समझता है तो भी लोक संग्रह के लिए कर्म करना उचित है। हे अर्जुन! बड़े आदमी जो कर्म करते हैं उन्हीं कर्मों को साधारण मनुष्य किया करते हैं और वे जिन बातों को प्रमाण मान लेते हैं लोग भी उन्हीं के अनुगामी हो जाते हैं। हे पार्थ! तू मुझको ही देख, मुझको तीनों लोकों में कुछ करना नहीं है और

न किसी वस्तु के प्राप्त करने की अभिलाषा है तब भी कर्म करता हूं। जो मैं ही आलस्य छोड़ सावधान हो कर्म करने में प्रवृत्त न होऊं तो ये सब मनुष्य सत्कर्मों का त्याग कर बैठेंगे, अर्थात् कर्म करना छोड़ देंगे। हे अर्जुन! जो कर्म करना छोड़ दूं तो कर्म लोप हो जाने से धर्म नष्ट हो जायगा जिससे ये सब लोक नष्ट हो जायेंगे और सृष्टि वर्णसंकर होने लगेगी, तो यह संकर-कारण मैं ही ठहरूंगा और इस प्रजा को नष्ट करने वाला भी मैं ही होऊंगा। हे पार्थ! जैसे अज्ञानी लोग कर्म करने में आसक्त होकर कर्म करते हैं, वैसे ही लोक-संग्रह के निमित्त विद्वान् लोग कर्म करने में आसक्त होकर कर्म करते हैं जो अज्ञानी हैं और कर्म करने में आसक्त हैं उनको कर्म न करने का उपदेश देकर उनकी बुद्धि में भेद उत्पन्न न करे।

विद्वान् लोगों को उचित है कि आप भी सावधान होकर उनसे करम करावें। हे अर्जुन! प्रकृति गुण से ये सम्पूर्ण कार्य हो रहे हैं परन्तु अहंकार से जो विमूढ़ हैं वे अपने को इन सब बातों का करनेवाला मान लेते हैं। हे महाबाहो! जो गुण और कर्म के विभागों के तत्त्व को जानते हैं कि सत्वादिक गुण अपने-अपने कार्य में वर्तमान हैं, इससे उनमें आसक्त नहीं होते। माया के सत्व, रज, तम गुणों में जो मनुष्य अत्यन्त मोहित हो रहे हैं, वे ही गुण उसके कर्म में आसक्त होते हैं। उन अल्पज्ञ पुरुषों को ज्ञानी कर्ममार्ग से न हटावें। शूरवीर अपनी वीरता के स्वभाव से आत्मा में मन लगा सम्पूर्ण कर्मों को छोड़ मुझमें समर्पण कर, फलकी आशा और ममता को छोड़ सब सन्तापों से रहित हो युद्ध करें। हे अर्जुन! जो मनुष्य श्रद्धालु हो और

मेरे वचन की निन्दा न करके इस मेरे मत को नित्य स्वीकार करते हैं वे भी इन कर्म बन्धनों से छूट जाते हैं। हे अर्जुन! जो प्राणी इस मेरे मार्ग को मानते नहीं और निन्दा करते हैं सो सबसे अज्ञानी अन्धमत मूढ़ मूर्ख हैं, उनको विचारहीन और नष्ट समझो। फिर जो अज्ञानी स्वभाव ही के अनुसार काम करते हैं। फिर जो अज्ञानी मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करें तो कहना ही क्या है? सम्पूर्ण प्राणी अपनी प्रकृति के अनुसार काम करते हैं। यतः प्रकृति बलवान् है। इसमें इन्द्रियों का निग्रह कुछ नहीं कर सकता है। हे अर्जुन! प्रत्येक का इन्हीं अपने-अपने विषय से राग द्वेष है, अर्थात् अनुकुल वस्तु में राग और प्रतिकूल वस्तु में द्वेष है। इस राग द्वेष के वशीभूत होना उचित नहीं है, क्योंकि ये दोनों मोक्ष में विघ्न डालने

वाले हैं। अच्छी तरह किये हुए भी पराये धर्म से अपना धर्म गुण से रहित होने पर भी श्रेष्ठ है। अपने धर्म पर मरना श्रेष्ठ और दूसरे का धर्म भयानक है, अर्थात् तेरा जो युद्ध रूप क्षत्रिय धर्म है, इसमें मरने पर भी स्वर्ग मिलेगा और इसको त्यागने में नरक होगा। अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण! पाप करने की इच्छा किसी की नहीं होती है फिर जैसे भी कोई बलपूर्वक करता है ऐसे वह मनुष्य को पाप कर्म में प्रवृत्त कराने वाला कोई-न-कोई अवश्य है। सो हे कृष्ण! वह कौन है? श्री भगवान्‌जी बोले, हे अर्जुन! यह काम, अर्थात् कामना ही है जो किसीप्रकार फलवती न होनेपर क्रोधमें परिणत हो जाती है। इस क्रोधकी उत्पत्ति रजोगुणसे है। यह काम बड़ा खाने वाला है, अर्थात् अनेक प्रकारके भोगोंको भोगता हुआ भी नहीं अघाता

है और यह क्रोध बड़ा पापी है इसे मनुष्यों का परम शत्रु समझो जैसे अग्नि धूएं करके छा जाती है आरसी मैल से ढकी होती है और जरायु में गर्भ का बालक ढका रहता है, वैसे ही यह ज्ञान भी कामना ने ढांक लिया है। यह कामना नित्य ही मनुष्य की वैरी है। यह भोगों को भोगते हुए भी नहीं अघाती है। जैसे अग्नि लकड़ी मिलनेसे बढ़ती है, वैसे ही ज्यों-ज्यों इसे भोगने की वस्तु मिलती है वैसे ही बढ़ती है और भोग्य पदार्थों के न मिलने पर अग्नि की तरह जलाती है। ऐसे इस काम ने ज्ञानियों का ज्ञानभी ढक रखा है। हे अर्जुन! सम्पूर्ण इन्द्रियां और मन बुद्धि ये काम के उत्पत्ति स्थान और निवास की जगह हैं। इनमें बसकर मनुष्यों को मोहित करते हैं तिस कारण हे भरतकुलभूषण! ऊपर कहे हुए कारणों से तू पहले इन्द्रियगण मन और बुद्धि को वश में कर

क्योंकि यह बड़े पाप रूप हैं। आत्मज्ञान और शास्त्र-ज्ञान दोनों नाशकरने हारेहैं बाह्य जो स्थूल पदार्थ हैं उनसे इन्द्रिय परे और श्रेष्ठ है बुद्धि मन से परे और श्रेष्ठ है और बुद्धि से परे आत्मा सर्वश्रेष्ठ है। इसी आत्मा को यह दुष्ट काम मोहित करता है। हे महाबाहो ! इस तरह बुद्धि से परे आत्मा को जानकर और मन को वश में करके इस महा अजेय काम क्रोध रूप जो शत्रु हैं तिनको मारकर (दमन कर) जय को प्राप्त होगा।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन-संवादे सांख्ययोगो नाम तृतीयोऽध्याय

—❀❀—

तीसरे अध्याय का माहात्म्य

श्री विष्णु ने कहा। हे लक्ष्मी ! तुमने दूसरे अध्याय का माहात्म्य सुना। अब मैं तीसरे अध्याय का माहात्म्य सुनाता हूं। एक ब्राह्मण नित्य ही खोटे कर्म (चोरी आदि) किया करता था। कुछ दिन बाद उसकी मृत्यु हुई। खोटे

कर्मों के कारण वह प्रेत योनिको प्राप्त हुआ। उसकी स्त्री गर्भवती थी और उसकी कोख से पुत्र उत्पन्न हुआ। जब बालक बड़ा हुआ तब अपनी माता से पिता के मरने का हाल पूछा। ब्राह्मणी ने सब कह सुनाया। मेरे पिता की नीच योनि हुई होगी, उससे उनके उद्धार के लिए गयाजी जाय पिंडदान करूं तिससे निश्चय ही पिताजी सद्गति को प्राप्त होंगे। ऐसा विचार कर बालक गयाजी को चल दिया। बालक नित्य ही गीता का पाठ किया करता था। रास्ते में एक दिन पीपल के वृक्ष क नीचे बैठकर तीसरे अध्याय का पाठ किया। संयोग से उसका पिता भी प्रेत योनि को प्राप्त होकर उसी पीपलपर निवास करता था। अपने पुत्र द्वारा किये गए तीसरे अध्याय के पाठ को सुनकर वह देवगति को प्राप्त हुआ। और उसके पहले ७ पीढ़ी तक के पुरखा जो नरक में पड़े दुःख भोग रहे थे, स्वर्ग को प्राप्त हुए। बालक अपने पुरखों को स्वर्ग को जाता हुआ देख प्रसन्ता को प्राप्त हुआ इसी तरह ज्ञान पूर्वक जैसे नौका को बनाकर मनुष्य सागर से पार उतर जाता है उसी प्रकार कर्म द्वारा मृत्युरूप इस असार संसार रूपी समुद्र को तर कर मनुष्य ज्ञान द्वारा मोक्ष को प्राप्त होता है। हे लक्ष्मी! इस प्रकार ज्ञान और कर्म के

रहस्य को जानकर कर्म करने वालों की परम गति होती है। इसलिए जो पुरुष इस अध्याय के गूढ़ तत्व को जान कर या उसके अनुकूल आचरण और पाठ करेगा वह अवश्य ही मोक्ष पद को प्राप्त होगा।

इति श्री पद्मपुराणे ईश्वरासंवादे उत्तरखंडे गीतामाहात्म्य नाम तृतीयोऽध्यायःसमाप्तः

—❀❀—

अथ चौथा अध्याय

श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुन से कहते हैं हे अर्जुन! यह कर्म-योग प्रथम मैंने सूर्य को सुनाया था। सूर्य ने मनु को कहा, फिर मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को कहा था यह ज्ञान योग इसी क्रम से चला आया है। इसे ऋषि लोग जानते थे। हे परन्तप! यही योग फिर बहुत काल बीतने पर नष्ट हो गया। यही प्राचीन योग आज मैंने तेरे प्रति सुनाया है तुझे सुनाने का कारण यही है कि तू मेरा

परम भक्त है और सखा भी है इसलिए यह उत्तम गुप्त भेद तुझे सुनाया है। यह सुन अर्जुन ने पूछा हे कृष्ण ! तुम्हारा जन्म पीछे हुआ है और सूर्य पुरातन है फिर हम यह कैसे जान सकते हैं कि आपने यह कर्म योग सूर्य को कब सुनाया था। अर्जुनकी बात सुन श्रीकृष्ण ने कहा हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत से जन्म बीत गये हैं। सो उन सब जन्मों का वृत्तांत मैं जानता हूं। तुम नहीं जानते सो यद्यपि मेरी आत्मा अविनाशी है, मैं प्राणियों का ईश्वर भी हूँ तो भी अपनी सात्विक प्रकृति का अवलम्बन कर अपनी माया से अवतार लेता हूँ। हे भारत जबजब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तबतब मैं अवतार धारण करता हूँ जो साधु महात्मा अपने धर्म पर स्थिर हैं उनकी रक्षा के लिए पापियों के नाश के लिए और धर्म की संस्थापना के निमित्त धर्म

बढ़ाने के लिए मैं युग-युग में अवतार धारण करता हूँ। हे अर्जुन! जो मेरे इन जन्म कर्म को अलौकिक जानकर इनके तत्त्व को जान लेते हैं वे इस देह को छोड़ फिर जन्म नहीं लेते हैं और मुझको प्राप्त हो जाते हैं, अर्थात् आवागमन से छूट कर मुझ में मिल जाते हैं। मेरे अवतारों को अलौकिक तत्त्व जानने से बहुत मनुष्यों के रोग भय क्रोध जाते रहते हैं और वे सब पदार्थों में मुझेही देखते हैं और मेरे ही आश्रित रहते हैं ऐसे पुरुष ज्ञान और तप से पवित्र होकर मेरे भाव को प्राप्त हो गये हैं जो मुझे सकाम और निष्काम जिस तरह से भजता है मैं उसे वैसाही फल देता हूँ। जोसकाम पूजन करते हैं उनको कर्मानुसार फल देता हूँ और जो निष्काम भजते हैं वे मेरे स्वरूपको प्राप्त होते हैं जो तू कहे कि सभी मनुष्य तुम्हारा भजन क्यों नहीं करते हैं तो उनकी

बात सुन इस संसार में जो मनुष्य कर्मकी सिद्धिको चाहते हैं वे इन्द्रादि देवताओं की उपासना करते हैं, क्योंकि मनुष्य लोक में कर्म की सिद्धि शीघ्र होती है और मेरी साक्षात् सेवा से ज्ञान का फल स्वरूप जो मुक्ति है सो कठिनता से मिलती है। ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चारों वर्ण अपने-अपने गुण कर्म से मैंने ही बनाए हैं। यद्यपि इनका कर्त्ता अकर्त्ता मैं ही हूँ तो भी मुझेकिसी कर्म किये का लेप नहीं लगता, क्योंकि मैं अविनाशी हूँ और इन में मेरी आसक्ति नहीं है। हे अर्जुन ! कर्म मुझको लिप्तनहींहोते हैं और न कर्म फल में मेरी इच्छा है, क्योंकि मैं पूर्ण काम हूँ। जो मुझको ऐसा जानते हैं वे कर्म से नहीं बँधते हैं। पहिले जनकादिक समस्त जनों से भी ऊपर कही हुई सब बातें जान कर कर्म किया गया था इससे अब तुम भी वही कर्म करो जो

पूर्व पुरुषों ने पहले किये हैं। हे अर्जुन ! कौन-सा कर्म कर्तव्य है और कौन सा कर्म करने योग्य नहीं, इस बात के विचार में बड़े-बड़े पंडितों की बुद्धि चक्कर में पड़ जाती है उसी कर्म का वर्णन मैं तुमसे करता हूँ। जिसे जानकर संसार के बन्धनों से छूट जाओगे। एक तो वे कर्म हैं जो शास्त्रोक्त रीति से अवश्य करने योग्य हैं। एक वे कर्म हैं जो निषिद्ध हैं और एक अकर्म हैं जिसका तत्त्वज्ञान होने पर त्याग कहा है। इन तीन प्रकार के कर्मों का विचार करना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि कर्म की गति बड़ी कठिन है जो कर्म को अकर्म और अकर्म को कर्म समझता है, अर्थात् कर्म करना जिसके ज्ञान में बाधा नहीं करता है और शास्त्रोक्त कर्मके न करने ही में कर्तव्यता देखता है वही ज्ञानी सम्पूर्ण कामों का करने वाला है। हे अर्जुन !

ज्ञानरूपी अग्नि से जिसके सब कर्म जल गये हैं ऐसा जो होवे तिस को ज्ञानी पुरुष पण्डित कहते हैं जो कर्म-फल की इच्छा नहीं करता है और न उसमें आसक्ति रखता है और सबका आश्रय छोड़ नित्य तृप्त रहा है यद्यपि ऐसा मनुष्य कर्म में प्रवृत्ति रखता भी हो वह कुछ नहीं करता है। जो सम्पूर्ण आशाओं को छोड़ कर चित्त और आत्मा को वशीभूत कर सब संसारी झगड़ों से मुख मोड़कर केवल शरीर मात्र से कर्म करते हैं वे भी कर्म बंधन से पीड़ित नहीं होते हैं। हे अर्जुन ! जो पुरुष अपने आप मिली हुई वस्तुओं पर संतोष करते हैं दुःख सुख, हानि लाभ से जिनके मन को वेदना नहीं होती है, जो मत्सरता रहित हैं जिनकी बुद्धि सिद्धि असिद्धि में समान है वे कर्म करके भी बन्धन में नहीं बंधते हैं जो भाई बन्धु स्त्री पुरुष आदि की आसक्ति से छूट गया

है और सांसारिक विषय वासना से रोक रक्खी है और ज्ञान में जिसका चित्त स्थिर है, वह यज्ञ के लिए जो कर्म करता है उसके वे सब कर्म वासना सहित लीन हो जाते हैं। ब्रह्म के अर्थ और ब्रह्म ही हवि तथा ब्रह्मरूप अग्नि ये ब्रह्म ही ने दिया है इस प्रकार जो जानता है, अर्थात् होम, अग्नि, स्त्रुवा, हवि, कर्त्ता, घृत आदि सब सामग्री ब्रह्मस्वरूप है। जिसकी ब्रह्मकर्म में वृत्ति है वह अवश्य ब्रह्म को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! कितने ही कर्मयोगी श्रद्धापूर्वक इंद्रादि देवताओं की पूजा करते हैं और कितने ही ज्ञानयोगी ब्रह्मरूप अग्नि में ब्रह्मरूप से हवन करते हैं। हे अर्जुन कितने ही ऐसे योगी जो अपने नेत्र कान आदि इन्द्रियों को संयम रूप अग्नि में होम देते हैं। कितने ही इन इन्द्रियों के रूप शब्दादि विषयों को इन्द्रिय रूप अग्नि में होम देते हैं। कितने ही ऐसे योगी हैं

जो कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय के कर्म को तथा प्राण, अपान आदि देश प्राणों के कर्म को ज्ञान से जलती हुई मन के निग्रह रूह अग्नि में होमते हैं, अर्थात् सब विषय-वासना से दूर हो केवल ब्रह्म में लीन हो जात हैं। जो अपने नियम में बड़े तत्पर हैं उनमें से कितने ही द्रव्य दान के और कितने ही वेद का पठन-पाठन रूप यज्ञ करते है। कितने ही प्राणायाम् में लीन होकर प्राण और अपान की गति को रोक कर अपान में प्राण हवन करते और प्राण में अपान का हवन करते और कितने ही क्रम-क्रम से एक-एक ग्रास घटाते हैं। और ये जितने प्रकार के यज्ञ कहे हैं सो सभी पापों को नाश करते हैं। जो यज्ञ शेष है अमृत रूप अन्न का भोजन करते हैं वे सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। हे अर्जुन ! जो यज्ञ नहीं करते है उनको न यह लोक है न

परलोक है। ऐसे बहुत तरह के यज्ञ वेद मे वर्णित हैं। इन सबकी उत्पत्ति कर्म है इन्हें जानने से तेरी मुक्ति हो जायगी। हे अर्जुन! द्रव्य यज्ञ से ज्ञान श्रेष्ठ है। क्योंकि जितने कर्म हैं वे सब ज्ञान में समाप्त होते हैं। तत्त्वदर्शी ज्ञानी लोग इस तत्त्वज्ञान का तुझे उपदेश देंगे जब तू उनकी सेवा करेगा, हाथ जोड़ेगा प्रणाम करेगा और अनेक प्रकार से पूछेगा कि इस संसार में मेरी मुक्ति कैसे होगी। हे अर्जुन! इस ज्ञान के प्रताप से तुझे ऐसा मोह फिर कभी न होगा और इसी ज्ञान से सम्पूर्ण प्राणियों को अपनी आत्मा में और मुझमें भी देखेगा। अब इस ज्ञान का फल सुन जितने पाप जान अनजान से किये हैं तिन पापों का जो फल दुःख है सो तिन दुखों से ज्ञान नाव में चढ़ के दुःख सागर से पार हो जायेगा। हे अर्जुन! जैसे जलती हुई अग्नि काष्ठ को जलाकर भस्म कर देती

है वैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण मोह को जलाकर भस्म कर देती है। केवल यह बात नहीं है कि ज्ञान द्वारा पापों से ही पार हो जाते हैं। इस संसार में ज्ञान के समान और कोई वस्तु चित्त शुद्ध करने वाली नहीं। यह ज्ञान कुछ काल पर्यन्त अभ्यास करते करते कर्मयोग के द्वारा सिद्ध हो अपने आप ही उपज आते हैं। अपने गुरु के उपदेश में श्रद्धा वाले और ज्ञान की तृप्ति में तत्पर जितेन्द्रिय पुरुष ज्ञान को पाते हैं और इस को पाकर फिर थोड़े ही काल में मोक्ष को पाते है और जो अज्ञानी श्रद्धा रहित और जिनके मन में संदेह बना रहता हैं वे नष्ट हो जाते हैं। संदेह रखने वाले को न इस लोक का सुख प्राप्त होता है न परलोक का। उसको सुख का नाम मात्र भी नहीं मिलता है हे अर्जुन! ईश्वराराधना रूपयोग से जिसके सब संशय छिन्न भिन्न

हो गए हैं ऐसे आत्मज्ञानी पुरुषों को कर्म का बन्धन नहीं होता है। कर्म तो केवल लोक संग्रह के लिये हैं। हे अर्जुन! इन ऊपर कहे हुए हेतुओं से तेरे हृदय में जो अज्ञान से संशय (संदेह) उत्पन्न हुआ है उसको इस ज्ञान रूपी खड्ग से काट डाल और युद्ध रूप जो कर्मयोग उपस्थित हुआ है इसके करने में संलग्न हो।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-सम्वादे
कर्म संन्यास योगो नाम चतुर्थोऽध्यायः।

चौथे अध्याय का माहात्म्य

भगवान् बोले, हे लक्ष्मी! जो पुरुष गीताजी का पाठ करते हैं तिनके छूने मात्र से अधम देह से छुटकारा पाकर विवेक को प्राप्त होते हैं। लक्ष्मीजी ने पूछा–हे महाराज! श्री गीताजी के पाठ करने वाले को छूकर कोई जीव मुक्त भी हुआ है? तब श्री भगवान्जी ने कहा हे लक्ष्मी! तुमको मुक्त हुए पुरुष की पुरातन कथा सुनाता हूँ। भागीरथी गंगा के किनारे श्री कांसी नगर है। वहां एक वैष्णव रहता था। वह

श्री गंगा जी में स्नान कर श्री गीताजी के चौथे अध्याय का पाठ किया करता था उस वैष्णव के पास तप ही धन था। एक दिन वह साधु बन में गया वहां बेरी के दो वृक्ष थे। वह साधु उनकी छाया में बैठ गया और बैठते ही उसको निद्रा आ गई। एक बेरी से उसके पांव लगे और दूसरी बेरी के साथ सिर लग गया तो दोनों बेरियां आपस में कांप कर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। उनके पत्ते सूख गये। परमेश्वर के कहने से वे दोनों बेरियां ब्राह्मण के घर जा पुत्रियां हुईं। हे लक्ष्मी! बड़े पुण्य संचित कर मनुष्य देह मिलती है, दोनों लड़कियों ने उग्र तप करना प्रारम्भ किया। जब दोनों बड़ी हुईं तब उनके माता-पिता ने कहा, हे पुत्रियो! हम तुम्हारा विवाह करते हैं। तब उन दोनों ने उत्तर दिया हम विवाह नहीं करातीं। उनको अपने पिछले जन्म की सब बातें याद थीं। वे पवित्र जाति में जन्मी थीं, उन्होंने कहा कि हमारे मन में एक कामना है यदि ईश्वर उसे पूर्ण करे, तब बहुत भली बात है। उनके मनमें यही था

कि वह साधु जिसके स्पर्श करने से हमारी अधम देह छूट के यह देह मिली है, वह हमें मिले। इतना विचार कर उन दोनों लड़कियों ने माता-पिता से तीर्थयात्रा करने की आज्ञा मांगी तो माता-पिता ने आज्ञा देदी तथा उन दोनों कन्याओं ने माता-पिता के चरण छूकर प्रस्थान किया। तीर्थयात्रा करती-करती काशी में पहुँचीं वहां जाकर देखा कि वह तपस्वी बैठा है जिसकी कृपा से बेरी की देह से छूटी हैं। तब दोनों कन्याओं ने चरण छूकर दण्डवत् करी। हे संतजी! धन्य हो आपने हमको कृतार्थ किया है तब उस तपस्वी ने कहा मैं तो तुमको जानता नहीं, कन्याओं ने कहा हम आपको पहचानती हैं हम पिछले जन्म में बेरियों की योनि में थीं, आप एक दिन बन में आये, अधिक धूप के कारण बेरियों की छाया तले आ बैठे, लम्बा स्थान न होने से एक बेरी के चरण और दूसरी को सिर लगा। उसी समय हम बेरियों की देह से मुक्त हुईं। अब विप्र के घर में जन्मी हैं, बड़ी सुखी हैं। आपकी कृपा से हमारी गति हुई। तब तपस्वी ने कहा मुझे इस बात की

खबर न थी तुम्हारी क्या सेवा करूं तुम ब्रह्म रुप उत्तम जन्म श्री नारायणजी का मुख हो, तब उन कन्याओं ने कहा, हमको श्री गीता के चौथे अध्याय का फल दान करो, जिसको पाकर हम देव देही पाकर सुखी होवें। तब उस तपस्वी ने चौथे अध्याय के पाठ का फल दिया और कहा कि तुम्हारी मुक्ति हो। इतना कहते ही आकाश से विमान आये, उन दोनों ने देव देह पाकर बैकुण्ठ को गमन किया। फिर तपस्वी को ज्ञात हुआ कि श्री गीताजी के चौथे अध्याय का ऐसा माहात्म्य है तब श्री नारायणजी ने कहा, हे लक्ष्मी! यह चौथे अध्याय का माहात्म्य है जो मैंने तुमको सुनाया।

इति श्री पद्मपुराणे सतीईश्वरसंवादे उत्तराखंडे गीता-माहात्म्य-नाम चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः।

—❀❀—

अथ पांचवां अध्याय

अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण! तुम कर्मों के त्याग का भी उपदेश देते हो और फिर कर्म करने के लिये भी कहते हो, अब

इन दोनों में जो श्रेष्ठ हो उस एक बात को निश्चय करके मुझसे कहो। यह सुन श्रीकृष्णजी बोले-हे अर्जुन! कर्म का त्याग और कर्म का पालन ये दोनों ही कल्याण करने वाले हैं। इन दोनों में कर्म संन्यास से कर्म श्रेष्ठ है अर्थात् कर्म करते-करते चित्त के शुद्ध होने से संन्यास होता है। हे महाबाहो! जो प्राणी ज्ञान की ऐसी बात को समझने वाला संन्यासी है, जो न तो किसी से द्वेष करता है और न किसी बात की इच्छा करता है ऐसे पुरुष ही बन्धन से छूट जाते हैं। हे अर्जुन! अज्ञानी ही सांख्य और योग को अलग-अलग कहते हैं पण्डित कभी ऐसा नहीं कहते। जो इन दोनों में से एक में भी अच्छी तरह स्थिर हो जाता है वह दोनों का फल पाता है। हे अर्जुन! ज्ञान से जो स्थान मिलता है वही कर्मयोग से भी मिलता है। इससे जो ज्ञान और कर्म को एक

ही देखते हैं वही अच्छी तरह देखने वाले विद्वान हैं। हे महाबाहो अर्जुन ! बिना कर्मयोग संन्यास को पाना कठिन है और कर्म के करने वाले मुनिजन कर्म करने से चित्त शुद्धि द्वारा शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं। हे अर्जुन ! जो कर्मयोग से युक्त हैं अर्थात् कामना त्याग करके काम करते हैं, जिनका चित्त शुद्ध है जिन्होंने अपनी आत्मा और इन्द्रियां जीतली हैं औरजो अपनी आत्मा को सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा से भिन्न नहीं मानते हैं तो भी उन में लिप्त नहीं होते हैं। हे अर्जुन ! कर्म से मुक्त तत्त्वज्ञानी लोग देखते हैं, सुनते हैं, स्पर्श करते हैं, सूंघते हैं, चलते हैं, सोते हैं, श्वास लेते हैं तो भी यही जानते हैं कि मैं कुछ भी नहीं करता हूं। वे बोलते हैं, छोड़ते हैं, ग्रहण करते हैं, आंख खोलते हैं, बंद करते हैं परन्तु यही समझते हैं कि कुछ नहीं करते, इन्द्रियां ही अपने २

विषय को बरतती हैं । जो मनुष्य कर्म करते हैं और उन कर्मों को ब्रह्म में अर्पण कर फल की इच्छा को छोड़ देते हैं उन पुरुषों से पाप ऐसे लिप्त नहीं होता जैसे कमल पत्रों पर जल नहीं रहता है। हे अर्जुन ! शरीर,मन,बुद्धि और केवल इन्द्रियों से योगीजन फल की कामनाओं को छोड़ कर कर्म करते हैं। वो कर्म करना चित्त शुद्धि के लिए है। जो फल की कामना को छोड़ कर्म करने में तत्पर रहता है वह ईश्वर में निष्ठारूप शांति को पाता है और जो ईश्वर से विमुख है और फल की कामना में मन लगा कर काम करता है वही कर्म से बंधा हुआ है। जो जितेन्द्रिय पुरुष इन नौ इन्द्रियों से युक्त देह में मन से सम्पूर्ण काम को त्याग कर सुखपूर्वक रहते हैं वे अहंकार के न होने से स्वयं कोई काम नहीं करते हैं और ममता के अभाव से भी किसी से और कुछ नहीं

कराते हैं। परमात्मा इस जीव के न कर्त्तापन, न कर्मफल और न कर्मयोग के संयोग को बनाता है। इन सब काम की प्रवृत्ति कराने वाली प्रकृति है, अर्थात् जीव अपने जन्म के कर्मानुसार कर्म करने लगता है। हे अर्जुन! ईश्वर किसी के पुण्य और पाप को ग्रहण नहीं करता है। इस जीव का ज्ञान अज्ञान ने ढांक रक्खा है। इसी से अज्ञानी जीव मोह में फंस कर ईश्वर में विषय दृष्टि रखते हैं। हे अर्जुन! जिनका यह विषम अज्ञान आत्मज्ञान से नष्ट हो गया है उनको वह सूर्य के समान प्रकाश करता है और अंधकार रूप सब दुःख-सुख को मिटा देता है। उस परमात्मा ही में जिनकी बुद्धि है और उसी में जिनकी निष्ठा है और उसी में जो तत्पर हैं उसी परमात्मा की कृपा से ज्ञान द्वारा जिनके पाप नष्ट हो गये हैं वे इस संसार में फिर जन्म नहीं लेते हैं। जो विद्वान्

हैं वे विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण में, गौ, हाथी आदि में कुत्ता और चाण्डाल में, आत्मा के समान दृष्टि से देखते हैं अर्थात् अपने और उनमें कोई भेद नहीं मानते हैं। जिनका मन समानता में स्थिर है अर्थात् जो सबको समान दृष्टि से देखते हैं उन्होंने संसार को जीत लिया है क्योंकि ब्रह्म दोषरहित और समान है। इससे ऐसे जन इसमें स्थिर हो जाते हैं। हे अर्जुन ! जो भली वस्तु पाकर प्रसन्न नहीं होते हैं और बुरी वस्तु को पाकर शोक नहीं करते हैं ऐसी स्थिर बुद्धि वाले ज्ञानी ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म में स्थिर रहते हैं और बाह्य इन्द्रियों के रूपरसादि विषय में आसक्त नहीं हैं वे आत्मा परम-शांति रूप सुख का अनुभव करते हैं और इस शांति से वे ब्रह्मयोग में अपनी आत्मा लगाकर समाधि द्वारा अक्षय सुख का अनुभव करते हैं। हे अर्जुन ! जो रूप रसादि

इन्द्रियों के भोग हैं वे दुख के मूल कारण हैं। ये भोग पैदा होते हैं और मिट जाते हैं। इसमे विवेकी जन विषयों में रमण नहीं करते। जो मनुष्य जीते जी या जब तक शरीर में शक्ति रहे तब तक काम क्रोध के वेगों को जीत लेता है वही इस संसार में योगी है और वही सुखी है, क्योंकि पुरुषार्थ घटने पर तो सभी के काम क्रोध घट जाते हैं। हे अर्जुन जो अपनी आत्मा ही में सुख का अनुभव करता है और जो अपने अन्तःकरण के आत्म सम्बंधी ज्ञान से प्रकाशित है वही योगी ब्रह्मरूप होकर निर्वाणपद को प्राप्त हो जाता है। जिनको दो भाव नहीं हैं और अपनी आत्मा को अपने वश में कर लिया है, जो प्राणीमात्र की भलाई चाहते हैं और जिस के सम्पूर्ण पाप क्षीण हो गये हैं, वही निर्वाण सुख में मग्न होते हैं। जो काम क्रोध से रहित हो गये हैं, संयमपूर्वक रहते हैं, जिन्होंने

अपना मन वशीभूत कर रखा है और जो आत्मतत्त्वको जानते हैं उनके सब ओर ब्रह्म सुख वर्तमान रहता है। रूप रसादि इंद्रियों के बाह्य विषयों को बाहर करके और नेत्रों से भृकुटी का ध्यानकर प्राण और अपान वायु को समान रख कुम्भक प्राणायाम करे। भ्रू मध्य में दृष्टि रखना इसलिए कहा है कि बन्द करने से तो निद्रा का भय और खुले रहने से बाहरी विषयों पर मन दौड़ता है और वह दोनों वायु सम होकर नासिका में से संचार करते हैं। वह प्राणी जिसने अपनी इन्द्रियां मन बुद्धि को जीत लिया है सो मोक्ष ही का आश्रय लिये रहता है और जिसके इच्छा, डर और क्रोध भी नहीं वह सदा जीव मुक्त है। सम्पूर्ण यज्ञ और तपस्याओं का पालन करने वाला सम्पूर्ण लोकों का ईश्वर और भूत प्राणियों का मित्र, ऐसा मुझको जानते हैं, वह परम सुख पाते हैं।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्ण-अर्जुन सम्वादे कर्म संन्यासयोगो नाम पंचमोऽध्याय:

पांचवें अध्याय का माहात्म्य

शिवजी से पार्वतीजी ने पूछा कि हे महाराज ! गीता के पांचवें अध्याय का माहात्म्य बड़ा श्रेष्ठ सुना जाता है सो आप कृपा कर मुझे सुनाइये। तब शिवजी ने पार्वती से कहा कि जिस प्रकार मैं यह गीता के पाँचवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन करुंगा इसी प्रकार लक्ष्मीजी ने विष्णुजी से पूछा और विष्णुजी ने जैसा सुनाया है वह मैं तुम से कहता हूं। मन्दाकिनी नदी के किनारे करवी नाम की नगरी है वहां पर पिंगल नाम का एक ब्राह्मण वेद शास्त्र का जानने वाला और साधु महात्माओं की सेवा करने वाला था। उसने एक बार मन्दाकिनी के तट पर बड़ा भारी यज्ञ प्रारम्भ किया। यज्ञ में बलि के लिये एक बकरा लाया गया उसे स्नान कराके पूजन किया तो बकरा हंसकर बोला कि हे विप्र ! इन यज्ञों से जो फल मिलता है वह चंचल और नाशवान है। यज्ञ करने वाले की मोक्ष नहीं होती है। बकरे का यह शब्द सुनकर यज्ञ में बैठे हुए सभी ब्राह्मण आश्चर्य में पड़ गये। तब

पिंगल ब्राह्मण हाथ जोड़कर बोला कि आप अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त कहिये कि किस कर्म से आपको बकरे की योनि मिली है। तब वह बकरा बोला कि मैंने विप्र के घर जन्म लेकर अनेकों यज्ञ किये। एक समय मैं स्त्री के रोग शान्ति के लिये देवीजी की भेंट बकरा मंगा कर बलिदान देना चाहता था, वहीं पर उस बकरे की माता थी। उसने देखा कि मेरे पुत्र को ये बलिदान देना चाहता है तो उसने मुझे शाप दिया कि रे पापी विप्र ! जो तू मेरे पुत्र को मारना चाहता है तो तू भी बकरे की योनि को पावेगा। माता के शाप पर मैंने ध्यान नहीं दिया और उस बकरे को बलिदान किया। कुछ दिन बाद मेरी मृत्यु हुई परन्तु मुझे पूर्व जन्म का वृत्तान्त याद है कि बकरे की योनि को छोड़कर मैं बन्दर होकर नाचता रहा ! फिर कुत्ते की योनि मिली। एक दिन भूख से व्याकुल होकर एक बालक को काट लिया। उस बालक के पिता ने उस अपराध में मुझे ऐसा मारा कि मर गया। फिर मुझे एक बार घोड़े का जन्म मिला।

एक समय मेरा मालिक तीर्थ यात्रा के लिये जाने लगा तो मुझे दूसरे के हाथ बेच गया वह मुझे पेट भर खाने तक को नहीं देता था। एक दिन जल पिलाने के लिये वह तालाब में ले गया तब मैं वहां कीचड़ में फंस गया। मेरे मालिक ने निकालने के लिये बहुत उपाय किया परन्तु मैं नहीं निकल सका, वहीं मेरी मृत्यु हो गई। अनेक प्रकार की यातना व योनियों में दुःख भोग कर मैंने फिर बकरे का जन्म पाया है। मुझे इस यज्ञ में तुम बलिदान करो तो मेरे पूर्व जन्म के सब पाप दूर हो जावें। मैंने कुरुक्षेत्र में एक राजा को काल पुरुष दान करते समय गीता के पाँचवें अध्याय को सुना है उसके प्रभाव से ही मुक्ति हो जावेगी। तब विप्र ने उस बकरे से पूछा कि तुमने ऐसी घोर योनियां पाकर किस उपाय से उसका निर्वाह किया? बकरे ने कहा हे विप्र! जिस समय मैंने गीता के पाँचवें अध्याय को सुना तभी से मेरा दुःख बीत गया है। अब मेरे मुक्त होने का समय आगया है। यह हाल जानकर गोविन्द विप्र ने बकरे से गीता के पाँचवें अध्याय को सुना।

बकरा मरने पर स्वर्ग को गया। विप्र भी यज्ञ को पूरा करके गीता के पाँचवें अध्याय का पाठ प्रति दिन करने लगा जिसके प्रभाव से उसकी मुक्ति होगई। हे लक्ष्मीजी! यह पाँचवें अध्याय का माहात्म्य मैंने तुमको कह सुनाया जिसको सुन और जानकर सभी प्राणी मुक्त हो सकते हैं।

इति श्री पद्मपुराणेसतीईश्वरसम्वादे उत्तराखण्डे गीतामाहात्म्य नाम पंचमोऽध्यायः समाप्तः।

अथ षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

आत्मसंयोग योग

श्रीकृष्णजी ने कहा-हे अर्जुन! अपने किये हुए कर्म के फल की इच्छा को छोड़ जो अपना नित्य नैमित्तिक कर्म करते रहते हैं वे ही संन्यासी और वे ही योगी हैं और जो अग्निहोत्रादि कर्म को त्याग देते और कुआं बावली आदि का बनवाना इन सब कर्म को छोड़ निष्क्रिय हो जाते हैं, वे नतो संन्यासी हैं न योगी हैं अभिप्राय यह है कि केवल क्रियाओं को त्यागने वालासंन्यासीनहीं है।

परन्तु कर्म करते हुए फल की वांछा न करना संन्यास है। उसी का नाम योग है। बिना फलकी कामना को त्याग किये कोई भी योगी नहीं हो सकता क्योंकि कर्मफल का त्याग संन्यास और योग दोनों ही में है। जो ज्ञानयोग की प्राप्ति करना चाहते हैं उनको ज्ञान प्राप्ति का कारण कर्म कहा है। क्योंकि निष्काम कर्म करने से चित्त शुद्ध होता है, चित्त शुद्धि से ज्ञान की प्राप्ति होती है और उस ज्ञानप्राप्ति से मनुष्य को शांति मिलती है। हे अर्जुन ! जब मनुष्य की इन्द्रियां किसी विषय को न उठें और मन में स्मरण बिना कोई चिन्ता भी न हो जब ऐसा हो तो तब योगारूढ़ कहाता है इसलिए विवेकी पुरुष अपनी आत्मा का संसार में आप ही उद्धार कर उसकी अधोगति न करें। क्योंकि कामना से रहित जो आत्मा है वह मित्र के समान उपकारी है, जिसने मुझको

विसार कर अपनी आत्मा को विषयों में लगाया है वह अपना शत्रु है। हे अर्जुन! जिसने अपनी आत्मा से आत्मा को जीत लिया है तो वही आत्मा उसका बन्धु है और जो आत्मा को नहीं जीतता है उसकी आत्मा ही उसका शत्रु है जिसने अपना मन अपने वशीभूत कर लिया है और शीत, उष्ण, सुख-दुःख और मान अपमानमें सदा शांत रहता है, उसके हृदय में परमात्मा स्थित है। शास्त्र अथवा गुरु के सदुपदेश से उत्पन्न जो ज्ञान और अनुभव सिद्ध हो विद्वान् इनसे संतुष्ट हैं, जिनकी आत्मा और जिनका मन भी चलायमान नहीं होता है और इन्हीं कारण से जिनकी इन्द्रियां वशीभूत हो गई हैं वे कंचन, मिट्टी और पत्थर को एक समान समझते हैं ऐसे ही योगी योगारूढ़ होते हैं। हे अर्जुन ! जो मित्र शत्रु, बन्धुवर्ग, साधु और पापाचारियों को समान दृष्टि में रखता

है, वह योगियों से भी बढ़कर है। हे अर्जुन ! योगी को उचित है कि सदा एकांत में रहे, किसी को संग में न रखे, अपने मन और आत्मा को वशमें रखे, किसी बात की आशा न रखे और न किसी वस्तु का संग्रह करे। इस प्रकार निरंतर अपनी आत्मा को परमात्मा में लगाता रहे। हे अर्जुन ! योग साधनके लिये सुन्दर पवित्र भूमि में जो न बहुत ऊंची हो, न नीची, उस पर कुशा का आसन, उस पर मृगछाला बिछा के ऊपर वस्त्र बिछा कर निश्चित मन होकर बैठे। मनको एकाग्रकर चित्त को रोक क्रिया से रहित हो अपनी आत्म-शुद्धि के लिए योग साधन करे। सब देह फिर गर्दन को सीधा रखे और अपनी नासिका के अग्रभाग को देखे और किसी दिशा को न देखें, मन को शांत कर निर्भय हो ब्रह्मचर्य व्रत में स्थिर रहे। मुझ में चित्त लगा मन को रोक कर योग का साधन

करे। मन को वश में रखने वाला जो योगी इस प्रकार से सदा अपनी आत्मा को योग में तत्पर करेगा वह परम शांति अर्थात् निर्वाण पद को पावेगा। हे अर्जुन! अधिक भोजन करने वाले को और निराहार रहने वाले को अधिक सोने व जागने वाले को योग प्राप्त नहीं होता। जो मनुष्य युक्त आहार-विहार करता है और कर्म भी युक्ति पूर्वक करता है और नियम से सोता-जागता है, उसका योग दुःखों को दूर करने वाला है। तात्पर्य यह है कि योगी को उचित है कि आहार विहारादि परिमित और नियमानुकूल करे, जो मनुष्य अपनी आत्मा में ही चित्तकी वृत्तियां को रोक लेता है और सम्पूर्ण कामनाओं को छोड़कर निस्पृह हो जाता है तभी वह पुरुष सिद्धयोगी कहलाता है। जैसे जिस स्थान में पवन नहीं चलती वहाँ दीपक की ज्योति हिलती नहीं। ऐसे ही

जो अपना मन एकाग्र करके एकान्त में बैठकर योगाभ्यास में मन लगाता है उसका मन दीपककी भांति चलायमान नहीं होता जिस अवस्था में योगाभ्यास से अपनी चित्तवृत्तियों के रुकने पर जहाँ विश्राम लेता है, बुद्धि द्वारा आत्मस्वरूपको देखता है और अपनी आत्मा में ही सन्तुष्ट होता है। हे अर्जुन! जिस अवस्था विशेष में योगीजन किसी ऐसे अत्यन्त सुख का अनुभव करते हैं कि जो इन्द्रियों के विषय से दूर है और केवल बुद्धि द्वारा ही जाना जाता है। इसीसे उस सुख में स्थित योगी आत्मस्वरूप से चलायमान नहीं होता है। हे अर्जुन! जो आत्मस्वरूपी इस सुख को पाकर इससे अधिक और किसी लाभ को नहीं मानते हैं वे उस सुख में स्थित होकर बड़े-बड़े जो शीत गर्मी आदि के सुख-दुःख हैं उनमें भी विचलित नहीं होते हैं। जिस अवस्था में दुःख का

लेशमात्र भी नहीं रहता, उसी अवस्था को योगावस्था जानो। इससे स्थिर चित्त होकर यत्नपूर्वक योगाभ्यास करना उचित है। संकल्प से उत्पन्न होने वाली और योग में बाधा डालने वाली अनेक तरह की कामनाओं को त्यागकर और इन्द्रियों को मनके संपूर्ण वेगसे रोककर योगाभ्यास करे, वशमें हुई बुद्धि से शनैः शनैः मन को आत्मा में निश्चल करे और किसी बात का चिन्तवन न करे, मन बड़ा चंचल है किसी जगह जल्दी स्थिर नहीं होता है। इससे जहां-जहां चित्त जाये वहां से इसे रोककर आत्मा से स्थिर करे। हे अर्जुन! ऊपर लिखी रीति के अनुसार शांत चित्त होने से सम्पूर्ण विकार स्वयमेव भाग जाते हैं आत्मा निष्पाप हो ब्रह्म में लीन हो जाता है। ऐसे योगी को समाधि का उत्तम सुख अपने आप प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार सदा आत्मा को लगाये रखने

वाला निष्पाप योगी सुखपूर्वक बिना परिश्रम महान् ब्रह्मसुख को भोगता है। सबको समान दृष्टि से देखने वाले योगाभ्यासी अपनी आत्माको सब प्राणीमात्र में देखते हैं और सब प्राणियों को अपनी आत्मा में देखते हैं। अर्जुन! जो मुझको सब प्राणियों में देखता है और सब प्राणियों को मुझमें देखता है उस योगी से मैं अदृश्य नहीं रहता हूँ। उस योगी को मैं प्रत्यक्ष होकर दर्शन देता हूँ। सभी भूत प्राणियों में मुझको व्यापक जानकर जो मेरा भजन करते हैं तिनका फिर जन्म नहीं और सब जनोंमें मैं व्यापता हूं। जो सम्पूर्ण प्राणियों के दुःख-सुख को अपने दुःख-सुख के समान मानता है और सबको एकसा देखता है, वही योगी श्रेष्ठ है। श्री कृष्णजी की बात सुनकर अर्जुन ने कहा-हे मधुसूदन! आपने जिस योग का मुझे उपदेश किया है सो समभाव से देखें सो मैं अपनी

बुद्धि की चंचलतासे यह समझता हूं कि इस प्रकार योगी का योग बहुत काल तक स्थिर नहीं रह सकता है। कृष्ण यह मन बड़ा चंचल है, देह और इन्द्रियों को क्षुधित करता है, बड़ा बलवान् और दृढ़ है। मनको रोकना मेरे लिए ऐसा कठिन है जैसे प्रचण्ड वायु को रोकना। अर्जुन की बात सुन श्री कृष्णजी बोले-हे महाबाहो निस्संदेह मन बड़ा चंचल है यह रुक नहीं सकता है। परन्तु कौंतेय! अभ्यास और वैराग्यसे निग्रह हो सकता है, अर्जुन! जिसका मन वशमें नहीं है वह योगसाधन नहीं कर सकता है जो जितेन्द्रिय हैं वे ही यत्नपूर्वक योगसाधन कर सकते हैं। यह सुन अर्जुन ने कहा-हे कृष्णजी! प्रथम ही श्रद्धापूर्वक योग साधन में प्रवृत्त हुआ, परन्तु पीछे ठीक उपाय न कर सका अर्थात् अभ्यास में शिथिल हो गया और इस कारण से उसका मन योगसे चलायमान

हो गया तो ऐसे मनुष्य योग के सिद्धरूप फल को न पाकर किस गति को प्राप्त होते हैं। जिस प्राणी ने निष्काम कर्म करके ईश्वर को समर्पण न किया और काम्य कर्म करके स्वर्गादि की प्राप्ति से भी वंचित रहा तथा योग सिद्ध न होने से मोक्ष न मिला वह मनुष्य दोनों ओर से नष्ट और अप्रतिष्ठ होकर क्या उस मेघ के समान नष्ट नहीं होता है जो एक मेघ से निकलकर दूसरे में न मिलने से बीच ही में नष्ट हो जाता है। हे कृष्ण ! मेरे इस संशय को दूर करने योग्य आप ही हैं। अर्जुन की बात सुन श्री कृष्णजी बोले–हे अर्जुन ! उस मनुष्य का इस लोक वा परलोक में कहीं भी नाश नहीं होता है क्योंकि कोई भी शुभ कर्म करने वाला दुर्गति नहीं पाता है। जो मनुष्य योगभ्रष्ट होकर उसी दशामें मर जाते हैं वे पुण्यात्मा लोगों के लोकों में जाकर बहुत दिन तक

वास करते हैं फिर पवित्र श्रीमान् पुरुषों के घर जन्म लेकर अनेक सुख भोगते हैं अथवा वे योगभ्रष्ट फिर बुद्धिमान् योगियों के घर जन्म लेते हैं। जो ऐसा जन्म है वह इस लोक में दुर्लभ है। हे अर्जुन! इस संसार में जन्म लेकर फिर वह पूर्व जन्म के बुद्धि-संयोग को प्राप्त होता है। उस बुद्धि संयोग से योगसिद्धि के लिये फिर प्रयत्न करता है और संसारिक विषय वासना में लिप्त होने पर भी वह उस पूर्व जन्म के कारण योग संसिद्धि में अनुरक्त हो जाता है। योगस्वरूप को जानने की इच्छा करने वाला भी केवल योग को ही नहीं पाता है अपितु वेदोक्त कर्मफल से अधिक फल पाकर मुक्त हो जाता है! जो योगी इस प्रकार यत्न करता रहता है उसके पाप दूर हो जाते हैं और वह योग की सिद्धि पाकर परमगति को पाता है। हे अर्जुन! तपस्वियों से कर्मनिष्ठों से

और ज्ञानियों से योगी श्रेष्ठ होता है। इससे हे अर्जुन ! तू योगी हो। जो श्रद्धापूर्वक मुझ में चित्त लगा मेरा ही भजन स्मरण करता है वह सम्पूर्ण योगियों में श्रेष्ठ है, उससे अधिक मुझे और कोई प्यारा नहीं।

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्ण-अर्जुन सम्वादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥

छठे अध्याय का माहात्म्य

श्री भगवान् ने कहा–हे लक्ष्मी ! गीता के छठे अध्याय का माहात्म्य सुनो। गोदावरी नदी के तट पर स्वर्ग के समान विष्णुपुर नामक एक नगर है। वहाँ का राजा ज्ञानश्रुति नाम का था, उसकी प्रजा भी धर्मज्ञ थी, लोग राजा की स्तुति करते थे। एक दिन राजा ज्ञानश्रुति अपने महल के ऊपर बैठा था, उसी समय आकाश मार्ग से उड़ता हुआ हंसों का झुण्ड आ गया और महल के ऊपर बैठकर विश्राम

करने लगा। बैठते ही उनमें से एक हंस वहां से बड़े वेग से उड़ा। उसका उड़ना देखकर साथ के हंसों ने कहा कि इतने उतावले होकर क्यों उड़ते हो। वह हंस लौटकर हंसों से बोला कि उधर देखो यह कैसा प्रतापवान् राजा बैठा है। इस राजा और रैयक मुनि का तेज व्याप्त हो रहा है। इस बात को सुनकर राजा ने सारथी को बुलाया और रथ में बैठ कर रैयक मुनि को ढूंढ़ने चल दिया। साथ में हजार गौ और बहुत-सा द्रव्य ले लिया। सारथी राजा की आज्ञा से रथ को हाँककर अनेक तीर्थों में रैयक मुनि को ढूंढ़ता हुआ चला परन्तु राजा के प्रताप से रथ कहीं नहीं रुका। तब बदरिकाश्रम के समीप पहुंचते ही रथ रुक गया। तब राजा ने जाना इन्हीं पर्वतों में कहीं मुनि अवश्य रहते होंगे। यह देख सारथी ने रथ को रोक दिया और राजा रथ से उतर मुनि को खोजने लगा। उसने आगे जाकर एक जगह देखा कि तपेश्वरी बैठा है। उसके प्रकाश से चारों ओर सूर्य जैसी किरणें निकल रहीं हैं। राजा ने समझ लिया कि यही

रैयक मुनि हैं फिर हजार गौ के सहित रैयक मुनि के पास पहुंचा और सम्पूर्ण सामग्री सामने रख कर दण्डवत् प्रणाम किया। मुनिजी राजा के ऊपर क्रोधित होकर बोले-सब माया का विस्तार हमारे सामने से उठा ले जाओ। राजा बहुत भय मानकर विनयपूर्वक बोला-हे मुनिश्वर ! आपको यह अद्भुत तेज कहाँ से प्राप्त हुआ है सो कृपाकर वर्णन कीजिये। रैयक मुनि ने कहा कि हे राजा ! यह गीताजी की महिमा है। मैं गीता के छठे अध्याय का प्रतिदिन पाठ करता हूं इसीसे देवताओं की दुःसह तेज राशि को मैंने पाया है और तू गीता के अभ्यास से रहित है। राजा ने भी मुनि से गीता के छठे अध्याय के माहात्म्य को जाना और उसका अभ्यास करके मुक्त हो गया। नारायणजी कहने लगे-हे लक्ष्मीजी ! जो मनुष्य इस छठे अध्याय का नित्य पाठ करते हैं वे निःसन्देह विष्णुलोक को प्राप्त होते हैं।

इति श्री पद्मपुराणे सतीईश्वरसंवादे उत्तर खंडे गीता-माहात्म्य-नाम षष्ठोऽध्यायः समाप्तः।

अथ सातवां अध्याय

हे अर्जुन ! अपना चित्त मुझमें लगाकर और मेरा ही आश्रय लेकर जिस प्रकार से संशय रहित मुझको पूर्ण रीति से जानोगे सो मैं कहता हूं । हे पार्थ ! अब तुमको सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान सुनाता हूं इसे जानकर फिर कुछ जानना नहीं रहता । हजारों मनुष्यों में कोई एक ऐसा होता है जो आत्मज्ञान जानने के लिये यत्न करता है और इन यत्न करने वालों में भी कोई ही मुझको भली-भांति जानता है । पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ प्रकार की भिन्न-भिन्न प्रकृति हैं । ये जो आठ प्रकार की प्रकृति हैं,इन्हें अपरा प्रकृति कहते हैं इससे अन्य जीव को भूत प्रकृति अथवा परा प्रकृति कहते हैं, इस बात को भली-भांति जानो । हे महाबाहो ! इस परा प्रकृति से यह जगत् धारण किया

गया है, हे कुन्तीपुत्र ! सम्पूर्ण प्राणिमात्र मेरी इन दोनों प्रकृतियों से उत्पन्न होते हैं। इस बात को अच्छी तरह जान कि मैं इस सम्पूर्ण जगत को उत्पन्न, पालन और नाश करने वाला हूं ! हे अर्जुन ! जैसे धागेमें मणि पिरोई जाती है उसी तरह यह संसार मुझमें पिरोया हुआ है इसलिए मुझसे परे कुछ भी नहीं है । जलों में रस, सूर्य चंद्रमामें ज्योति, सब वेदोंमें ओंकार, आकाश में शब्द और मनुष्य में पुरुषार्थ हूं । पृथ्वी में पवित्र गंध, अग्नि में तेज, तपस्वियों में तप, सम्पूर्ण प्राणियोंमें जीवन मैं हूं, सम्पूर्ण प्राणियों का सृष्टि-कर्त्ता मैं हूं । बुद्धिमानों में बुद्धिरूप, बलवानों में बलरूप मैं हूं । कामरहित जो सात्विक बल है वह मैं हूं और धर्म के अनुकूल जो वासना है वह मैं हूं । सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीनों मुझसे उत्पन्न हैं। मैं उनके वशीभूत नहीं हूं । इन्हीं तीनों गुणों

ने सम्पूर्ण जगत् को मोहित कर रखा है इससे मुझे कोई नहीं जानता है मैं इन भावों से परे हूं तथा इनका नियंता और विकार रहित हूं। यह मेरी माया बड़ी कठिन है। जो मेरी शरण आते हैं वे ही मेरी माया के पार पहुंचते हैं। हे अर्जुन! मेरी मायाने जिनका ज्ञान हर लिया है, उस ज्ञान के दूर हो जाने से वे असुर भाव को प्राप्त हो गये हैं ऐसे मूढ़ पापी और नराधम मुझको नहीं पाते हैं। हे धनंजय! रोगी, पीड़ित, आत्मज्ञान को जानने की इच्छा करने वाला, ऐहिक या पारलौकिक भोग भोगने वाला और ज्ञानी ये चार प्रकारके मनुष्य पहले जन्म के पुण्य उदय होने पर मुझे भजते हैं। इन चार प्रकार के पुरुषों में ज्ञानी श्रेष्ठ है क्योंकि वह सदा हम में युक्त रहता है। इससे ज्ञानी हमको प्यारा है और मैं ज्ञानी को बहुत प्रिय हूं। अर्जुन! बहुत जन्म तक ज्ञान संचित

करता हुआ जो इस सम्पूर्ण जगत् को वासुदेव जानकर मेरा स्मरण करता रहता है, वह महात्मा दुर्लभ है। अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार मनुष्य धन, जन, स्त्री, पुत्रादिक के लोभ के वशीभूत होकर उन वासनाओं के अज्ञान में डूब उन फलों की चाहना से मोहित मूढ़ प्राणी मुझको अजन्मा, अविनाशी नहीं जानते हैं। मैं भूत, वर्तमान और भविष्यत् इन तीनों कालमें उत्पन्न हुए सभी प्राणियों को जानता हूं और मुझको तू ही जानता है और कोई नहीं जानता है। हे अर्जुन! इस संसार में आकर प्राणी मुग्ध हो जाते हैं और मार्गों में फंस जाते हैं। इच्छा द्वेष से उत्पन्न जो फल प्राप्त करते हैं उनके फल शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और जो मेरा भजन पूजन करते हैं वे हमसे मिलते हैं। मैं विनाश रहित सर्वोत्तम और परमस्वरूप हूं। इसलिए जो बुद्धिहीन मुझको

किसी से प्रगट हुआ जानते और अन्य देवताओं की उपासना करते हैं उनको नाशवान् फल मिलता है। मैं योगमाया से आच्छादित हूं इसलिए सबके सामने प्रकाशित नहीं होता; केवल अपने भक्तों के ही सामने प्रत्यक्ष होता हूं और जो मेरी माया से अन्य देवताओं की पूजा करते हैं उन पुरुषों की श्रद्धा को मैं दृढ़ता देता हूं जिससे वे मुझे भूल जाते हैं। ऐसा मनुष्य उन्हीं देवताओं में श्रद्धा रखके उनकी आराधना करता है और उन्हीं देवताओं से अपने मनोवांछित फलों को पाता है। मैं भी उनको वैसी ही प्रेरणा करता हूं परन्तु जो हमें छोड़कर अन्य देवताओं की उपासना से सुख दुःखादि से छूट अपने चित्त को दृढ़ कर मेरा भजन करते हैं जो मेरा आश्रय लेकर जरा मरण से छूटने का उपाय करते हैं, वे उस ब्रह्म, सम्पूर्ण अध्यात्म और सम्पूर्ण कर्मों को जानते हैं।

जो मुझे अद्‌भुत जानते हैं, मेरे को ही अध्यात्म देव जानते हैं, वे युक्तचित्त वाले मरने के समय भी मुझको ऐसा ही जानते हैं, मुझे नहीं भूलते हैं, इसीसे परमानन्द अविनाशी पद को प्राप्त हो जाते हैं।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषद्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे प्रकृतिभेदो नाम सप्तमोऽध्यायः।

——

सातवें अध्याय का माहात्म्य

छठे अध्याय के माहात्म्य को सुनकर श्री लक्ष्मीजी ने कहा–हे प्रभो ! अब सातवें अध्याय के माहात्म्य को विस्तारपूर्वक हमारे कल्याण के लिए कहो। श्री लक्ष्मीजी का विशेष आग्रह देखकर श्रीविष्णु ने कहा-हे लक्ष्मी ! सातवें अध्याय का माहात्म्य कहता हूँ, पटना नामक नगर में शंकुकर्ण नाम का वैश्य रहता था। उसके चार पुत्र थे। वैश्य व्यापार करने के लिए देश-देशान्तरों में जाया करता

था। एक बार मार्ग में जाते हुए उसको काले गोपद्-चिह्नधारी सर्प ने डस लिया। सो वह परलोक सिधार गया। उसके साथी उसकी दशा देखकर दुःखी हुए और उसका दाहसंस्कार करके उसके सम्पूर्ण धन को लेकर घर लौट आए। शंकुकर्ण के पुत्रों को उसका सब धन देकर उसके मरने का समाचार कह उसकी गति करने को कहा। वैश्य के चारों पुत्र पिता की दुर्गति को सुनकर बहुत दुःखी हुए और ब्राह्मणों को बुलाकर पूछा कि सर्प के काटने से जिसका मरण होता है उसे अच्छी गति कैसे मिल सकती है। ब्राह्मणों ने कहा कि जिसका मरण परदेश में हो या सर्प आदि जीवों के द्वारा हो उसकी गति नारायणी बलि से मिलती है। उसके पुत्रों ने शास्त्र की विधि से नारायणी बलिको किया। अनेक प्रकार का दान देकर ब्राह्मण, साधु तथा ज्ञाति भाइयों को विधिपूर्वक भोजन दिया। शेष धन जो बचा चारों भाइयों ने बाँट लिया, परन्तु पिता के मरने की चिन्ता और शोक से वे रात-दिन व्याकुल रहने लगे। एक दिन शंकुकर्ण के

साथी व्यापारियों से एक पुत्र ने पूछा कि जिस स्थान पर हमारे पिता को सर्प ने काटा है, वह स्थान मुझे भी बताओ। मैं उस सर्प को मारकर अपने पिता का बदला लूंगा। व्यापारियों ने उस वैश्य पुत्र को अपने साथ ले जाकर वह स्थान दिखा दिया। शंकुकर्ण का पुत्र वहाँ सर्प के रहने का स्थान ढूंढने लगा। समीप में एक बांबी को देख कुदाली से खोदने लगा। तब उसमें से एक बड़ा विषधर सर्प निकला और पूछा तू कौन है, मेरा स्थान क्यों खोदता है। तब उस वैश्य-पुत्र ने कहा मैं शंकुकर्ण का पुत्र हूं। जिस सर्प ने मेरे पिता को काटा है, उसको मारूंगा। तब सर्प ने कहा हे पुत्र ! मैं शंकुकर्ण हूं मुझे मत मार अब तू घर जाकर मुझे इस अधम गति से छुड़ाने का उपाय कर। मेरे पूर्व जन्म के संस्कार से यह दशा हुई है। पुत्र ने अपने पिता के वचन सुनकर कहा हे पिता ! जो उपाय कहो सो तुम्हारी गति के लिए करें। सर्प ने कहा, हे पुत्र, किसी गीता पाठ करने वाले ब्राह्मण को घर बुलाकर भोजन वस्त्र; आदि से प्रसन्न करके उससे गीता के सातवें

अध्याय के माहात्म्य का फल मेरे वास्ते दिलाओ तो मेरा उद्धार हो। वैश्य-पुत्र पिता से विदा होकर अपने घर लौट आया और सब समाचार अपनी स्त्री को कह सुनाया। वैश्य-पुत्र की स्त्री ने कहा, जिस प्रकार गति हो वही उपाय करो। वैश्य-पुत्र ने नगर-भर के गीता पाठ करने वाले ब्राह्मणों को बुलाकर गीता के सातवें अध्याय का पाठ कराके ब्राह्मणों को भोजन-वस्त्र दक्षिणा देकर आशीर्वाद लिया और सातवें अध्याय के माहात्म्य का फल लेकर पिता को दिया, उससे शंकुकर्ण की सर्प से योनि छूट गया। दिव्य शरीर मिला और वह विमान पर चढ़कर देवताओं के सामने अपने पुत्र का धन्यवाद देता वैकुण्ठ धाम को गया। विष्णु ने कहा–हे लक्ष्मी! इस सातवें अध्याय के माहात्म्य को जो पढ़ेगा और सुनेगा वह सद्गति को प्राप्त होगा।

॥ इति श्री पद्मपुराणे सती–ईश्वरसंवादे उत्तराखंडे गीता माहात्म्य नाम सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ आठवां अध्याय

श्रीकृष्णजी के वचन सुनकर अर्जुन ने पूछा—हे पुरुषोत्तम! ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत क्या है. अधिदेव क्या है? इस देह से अधियज्ञ कैसे हुआ और इस देह में कौन है? फिर इस लोक में तथा मरने के समय में योगी पुरुष आपको कैसे जान सकते हैं और इसकी गति क्या है? अर्जुन के प्रश्नों को सुनकर श्रीकृष्ण बोले, हे अर्जुन! जो जगत् का मूल कारण है, वही ब्रह्म है और जो स्वभाव (जीव) है वह अध्यात्म है तथा सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति और वर्षा आदिक करने वाला जो द्रव्य त्यागरूप यज्ञ है सो कर्म है। जो नाशवान् है वह अधिभूत है। इन्द्रियों का अधिष्ठाता, देवताओं का अधिपति जो वैराग्य पुरुष है वह अधिदेवता है। हे अर्जुन! इस

देह में देवपूज्य मैं हूं। जो अन्त समय मुझको स्मरण करता हुआ देह त्याग करता है वह मेरे परमानन्द अविनाशी पद को प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है। हे अर्जुन! जिन-जिन भावों का स्मरण करता हुआ मनुष्य देह त्याग करता है, वह मनुष्य उस भाव में भावित होने के कारण उसी भाव को पाता है। इसलिए तू सब समय मेरा स्मरण करता हुआ युद्ध रूप अपने धर्म का पालन कर। इसी प्रकार से मुझ में मन बुद्धि लगाने से तू मुझे निश्चय ही पायेगा। अभ्यास योग युक्त होकर जो केवल परम पुरुष में ही मन लगाकर उसीका ध्यान करते हैं, वे निश्चय ही उसे पाते हैं। जो सकल विद्याओं का निर्माणकर्ता, अनादि, सिद्ध, सम्पूर्ण जगत का नियन्ता, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म और सबका पोषक, अचिन्त्य रूप सूर्य, के समान कान्तिमान और प्रकृति से

परे जो उस दिव्य रूप, परम पुरुष का भक्तिपूर्वक योगबल द्वारा मरण समय में प्राणों को भृकुटियों के मध्य अच्छी तरह से ठहरा कर ध्यान करता है, वह मुझसे मिल जाता है। हे अर्जुन! जिसे नाश रहित कहते हैं और रागद्वेषादि रहित योगीजन जिसको प्राप्त होते हैं और जिसको जानने की इच्छा से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, उस पद का संक्षिप्त वर्णन तुमसे कहूंगा। सम्पूर्ण इन्द्रियों का निग्रह करके मन को हृदय में रख और अपने प्राणों को भृकुटियों के मध्य में ले जाकर योग धारण कर। हे अर्जुन! जो मनुष्य देह को त्यागते समय (ॐ) इस एकाक्षर ब्रह्म का ध्यान करते हुए मेरा स्मरण करते हैं वे अवश्य ही मोक्षरूप परम पद को पाते हैं। हे पार्थ! जो मेरे में ही चित्त लगाकर नित्य प्रति निरंतर मेरा स्मरण करते हैं, वे एकाग्रचित्त वाले योगीजन

मुझे बहुत सुलभ रीति से पाते हैं। हे अर्जुन ! मुझसे मिलने पर परम सिद्ध महापुरुष, अनित्य और दुःख के भण्डार पुनर्जन्म को नहीं लेते हैं। ब्रह्मलोक से परे जितने लोक हैं, उनमें जो बार-बार जन्म लेते हैं। परन्तु हे कौन्तेय! मुझसे मिलने के बाद उनका पुनर्जन्म नहीं होता। ब्रह्मा का एक दिन सहस्र चौकड़ी युगों का होता है और उनकी रात्रि भी इतनी ही बड़ी होती है। अब इन युगों की मर्यादा! सुन, सत्तरह लक्ष अट्ठाइस सहस्र वर्ष का सत्ययुग, बारह लक्ष छियानवे हजार वर्ष का त्रेतायुग, आठ लाख चौंसठ हजार का वर्ष द्वापर, और चार लाख बत्तीस हजार वर्ष का कलियुग है। ये चारों तेतालीस लक्ष बीस हजार वर्ष के हैं यही एक चौकड़ी हुई। हे अर्जुन ! कारण रूप जो अव्यक्त ईश्वर है, उसी से चराचर प्राणी ब्रह्म के दिन के आगम में उत्पन्न होते हैं, रात्रि के आगम में उसी ब्रह्म में लीन

हो जाते हैं। हे पार्थ ! प्राणियों का समूह दिन में बराबर उत्पन्न होकर रात्रि के आगम में लीन हो जाता है और दिन के आगम में फिर उत्पन्न होता है। हे अर्जुन ! चराचर प्राणियों का जो अव्यक्त है, उसका भी कारण स्वरूप एक और अव्यक्त है, अर्थात् इन्द्रियों के विषय से अगोचर और अनादि जो सम्पूर्ण प्राणियों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता है जो अगोचर और अविनाशी कहा गया है, उसी की प्राप्ति को परमगति कहते हैं, जिस लोक को पाकर फिर संसार में नहीं आना पड़ता वही मेरा परम-धाम है। हे पार्थ ! जिसके भीतर चराचर प्राणी हैं और जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है, वह परम पुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होता है। हे भरत श्रेष्ठ ! जिस काल में योगीजन देह छोड़ कर फिर नहीं आते और जिस काल में आते हैं उन दोनों कालों को

कहता हूं। हे अर्जुन! अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष और उत्तरायण के छह महीनों में जो ब्रह्मवत्ताजन प्रयाण करते हैं वे फिर नहीं आते। धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन के छह मास और चन्द्रज्योति इन में जो योगी प्रयाण करते हैं, वे फिर संसार में आते हैं। कृष्ण पक्ष और शुक्लपक्ष ये दोनों योगियों के आने-जाने के सनातन मार्ग हैं। जो शुक्ल मार्ग से जाते हैं वे मुक्त हो जाते हैं और जो कृष्ण मार्ग से जाते हैं उनका आवागमन संसार में लगा रहता है। हे अर्जुन! जो योगी मोक्ष के मार्ग और संसार के दाता इन दोनों मार्गों को जानता है, वह मोक्ष नहीं पाता। इससे हे अर्जुन! सदा योगयुक्त हो; वेद, यज्ञ, तप, दान आदि में जो फल कहे गये हैं, उनसे अधिक जो

योग रूप ऐश्वर्य हैं उसे पाते है और उसको पाकर परमपद जो सर्वोत्तम स्थान है उस पर पहुंच जाते हैं ।

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषद्सूप ब्रह्म विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्ण-अर्जुन संवादे अक्षर ब्रह्म योगो नाम अष्टमोऽध्याय- ।।

—❀❀—

आठवें अध्याय का माहात्म्य

एक समय विष्णुजी के समीप बैठी हुई लक्ष्मीजी ने पूछा-हे महाप्रभो ! आपने गीता के सातवें अध्याय का माहात्म्य तो सुनाया अब आठवें अध्याय का माहात्म्यभी सुनाइये। लक्ष्मीजी के वचन को सुनकर विष्णुजी बोले-हे प्रिये ! आज मैं तुम्हें गीता के आठवें अध्याय का माहात्म्य सुनाता हूँ ध्यान देकर सुनो। एक समय मिथलापुरी में राजा मिथलेश के यहाँ वर्षा न होने के कारण बड़ा भारी अकाल पड़ा जिसमें राजा की सम्पूर्ण प्रजा अकाल से पीड़ित हो त्राहि-त्राहि करने लगी। राजा ने प्रजा के दुःखों को मिटाने के

लिए अनेकों यज्ञदान किये परन्तु प्रजा का कष्ट दूर नहीं हुआ। उसी चिन्ता से व्याकुल होकर राजा ने साधु ब्राह्मणों की सभा करके इसका विचार प्रारम्भ किया कि मेरे कौन-से पाप से यह अकाल पड़ा है। इन्द्रादि देवताओं की प्रसन्नता के लिए मैंने अनेकों यज्ञ किये, परन्तु यज्ञ भाग लेकर भी देवताओं ने वृष्टि नहीं की इसका क्या कारण है। उसी समय एक ब्राह्मण राज्यसभा में उपस्थित हुआ। राजा ने ब्राह्मण को अत्यन्त तेजस्वी जानकर सभा से उठकर आदर-पूर्वक बैठाया और उससे भी वही प्रश्न किया। ब्राह्मण ने कहा—तेरे राज्य में एक ब्राह्मण के सन्तान नहीं थी। वह ब्राह्मण संतान के लिए अजामेध यज्ञ करने के लिए सब सामग्री इकट्ठी करने लगा तो उसको कोई बकरा नहीं मिला। हार मानकर वह ब्राह्मण दुधमुही बकरी का बच्चा बकरी सहित मोल लेकर बच्चे को हवन में देने लगा तब बकरी बोली हे ब्राह्मण ! तू महा पापी है जो अपने पुत्र के लिए मेरे पुत्र का हवन करता है। जिस राजा के राज्य में ऐसा पापी

ब्राह्मण है वह राज्य सम्पूर्ण प्रजा के साथ दुःखी होवे, ऐसा शाप देकर वह बकरी पुत्रशोक में मर गई। कुछ दिनों के बाद वह ब्राह्मण भी मरा। जब धर्मराज के पास गया तब उन्होंने कहा यह ब्राह्मण बड़ा पापी है इसे नरक में भेज दो। उस ब्राह्मण का नरक से निकल-कर बन्दर, कुत्ता आदि योनियों में जन्म हुआ है। वह ब्राह्मण अनेक प्रकार की योनियों को भोगने से बड़ा दुःखी है। जब उसका और बकरी का उद्धार हो तब तेरी प्रजा सुखी हो। राजा ने कहा कि इसके उद्धार का उपाय क्या है सो कृपापूर्वक कहिये। ब्राह्मण ने कहा कुरु-क्षेत्र में धर्मरुचि नाम के एक संन्यासी रहते हैं वे बड़े गीतापाठी हैं। वे तुम्हारे नगर में आकरके आठवें अध्याय के माहात्म्य का फल तुमको दें तो उस ब्राह्मण और बकरी का उद्धार हो और सम्पूर्ण प्रजा सुखी होवे। राजा ने तुरन्त रथ को सजाकर सारथी के सहित कुरु-क्षेत्र में धर्मरुचि को लाने भेजा। सारथी ने वहाँ पहुंचकर राजा का सन्देश संन्यासी से कह सुनाया। गीता के आठवें अध्याय के

माहात्म्य के अभ्यास से वह संन्यासी अत्यन्त तेजवान् और प्रभावशाली था। राजा की मनोगत सब बातों को जानकर पहले तो वह बहुत उदास हुआ, पीछे महात्माओं की सम्पत्ति परोपकार के लिए होती है, ऐसा जानकर रथ पर बैठ मिथिला में आया, आते ही गीता के आठवें अध्याय के माहात्म्य के फल से ब्राह्मण और बकरी का उद्धार हुआ। वे दोनों अधम देह से छूटकर परमपद को पहुंचे और नगर में अपूर्व वृष्टि हुई।

॥ इति श्री पद्मपुराणे उत्तरा खंडे सतीईश्वरसंवादे गीता-माहात्म्य-नाम अष्टमोऽध्यायः समाप्त म् ।

— —

अथ नवां अध्याय

श्री भगवान्जी बोले-हे अर्जुन ! तू मेरी निन्दा करने वाला नहीं है इससे जो गुप्त से परम गुप्त ज्ञान है वह तुझे सुनाता हूं। इसे जानकर तू संसार में निर्लिप्त रहेगा। जो ज्ञान तुझे सुनाता हूं, वह सब विद्याओं का राजा है और सबसे अधिक गुप्त

रखने के योग्य अत्यन्त पवित्र है। जिसका जानना सुलभ है, वह वेदों का फल है। सुखपूर्वक साधन के योग्य है और नाम रहित है। हे परंतप ! जो ऐसे ज्ञान को नहीं जानते सो प्राणी मुझको प्राप्त नहीं होते और मरणशील संसार में जन्मते रहते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् मुझमें अव्यक्तरूप करके व्याप्त है। सब प्राणी मुझमें स्थित हैं और मैं उनमें स्थित नहीं हूं। ये सब प्राणी मुझमें स्थित नहीं हैं तो कदाचित् तू यह कहे कि तुम पहले कह चुके हो कि सब प्राणी मुझमें स्थित हैं इसमें पूर्वापर विरोध हैं। हे अर्जुन ! सो नहीं है। तू मेरे ऐश्वर्य सम्बन्धी योगबल को देख, प्राणियों का लालन-पालन करने वाली मेरी आत्मा प्राणियों का लालन-पालन करती है, परन्तु उनमें स्थित नहीं है। यह मेरा योग बल है। निरंतर आकाश में रहने वाला वायु बड़ा है और

सब जगह विचरता रहता है परन्तु आकाश में लिप्त नहीं होता। ऐसे ही सब प्राणी मुझ में स्थित हैं, परन्तु मैं किसी में लिप्त नहीं होता हूं। हे अर्जुन! प्रलयकाल में सम्पूर्ण प्राणी मेरी प्रकृति में लीन हो जाते हैं और उनको मैं कल्प के आदि में फिर छोड़ देता हूं। मैं अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर अपने कारण पराधीन इस सम्पूर्ण प्राणी समूह को बार-बार बनाता हूं। हे धनंजय! मैं उस सृष्टि के रचना-कर्म में आसक्त हूं। हे कौन्तेय! मैं ही अध्यक्ष हूं। मेरी इस अध्यक्षता से ही प्रकृति चराचर प्राणिमात्र को बनाती है। इसी कारण इस संसार का परिवर्तन होता रहता है। हे अर्जुन! मूढ़ मनुष्य मेरे सर्वभूत महेश्वर परमभाव को नहीं जानते हैं, इसीसे जो मैंने यह मनुष्यरूप धारण कर रखा है उस की अवज्ञा करते हैं। ये मूढ़ मनुष्य इसलिए मेरा अनादर करते

हैं कि इनकी आशा फलवती नहीं है। वह जो कुछ भले कर्मदान पुण्य आदि करते हैं, सब निष्फल हैं। सांसारिक दुर्व्यसनों से इनका चित्त विक्षिप्त रहता है और वे राक्षसी तथा आसुरी प्रकृति का आश्रय रखते हैं जो कि मोह को उत्पन्न करने वाली है। हे अर्जुन! दैवी प्रकृति का आश्रय रखने वाले महात्माजन तो मुझे सब जीवों का आदि रूप, अविनाशी जानकर सब ओर से चिंता हटाकर दृढ़ निश्चय से मेरा भजन ही करते हैं। भक्तिपूर्वक मुझे नमस्कार करते हैं और रात-दिन मुझमें ध्यान लगा कर मेरी उपासना करते हैं। कितने ही मनुष्य ऐसे हैं जो एक भाव (अभेद-बुद्धि) से मेरी उपासना करते हैं और कितने ही दास्यभाव (बुद्धि) से मेरी उपासना करते हैं और कितने ही सब जीवों का आत्म-स्वरूप मुझे ब्रह्मस्वरूप समझ कर मेरी उपासना करते हैं।

हे अर्जुन ! मैं प्रकृति भी हूं, पितरों का सुधा भी हूं, अनादि औषध भी हूं, मन्त्र हूं, होम की सामग्री हूँ, हवनाग्नि हूं, आहुति हूं. इस सम्पूर्ण जगत् का पिता-माता हूं, धाता हूं, पिता हूं, पितामह हूँ, जानने के योग्य हूं, पवित्र हूं, मैं ओंकार हूँ और चारों वेद हूं। मैं इस सब जगत की गति हूं, सबका पोषण करने वाला हूं, सबका स्वामी हूं। सम्पूर्ण कर्मों का साक्षी हूं, सबका निवास-स्थान हूं, सबकी शरण हूं, सबका हितकारी हूं, सबकी उत्पत्ति हूं, सबका लय करनेवाला हूं। बीजरूप हूं, अविनाशी हूं, सूर्य रूप से सबको तपाने वाला हूं, जल बरसाने वाला हूं प्राणियों का जीवन और मृत्यु हूं सत् असत् हूं। ऋग यजुः साम वेदत्रयी को जानने वाले वेदोक्त यज्ञकर्म करके सोम-रस का पानकर अपने पापों से छूटकर पवित्र स्वर्ग लोक में जाने

की जो कामना करते हैं, वे पुण्यरूप इन्द्रलोक में पहुंच स्वर्ग में वास अथवा दिव्य भोगों का भोग करते हैं। फिर अपने पुण्य-क्षीण होने पर मनुष्यलोकमें जन्म लेते हैं। वेदोक्त यज्ञादि कर्मों के करने वाले अपनी कामना की सिद्धि के कारण कभी स्वर्ग में जाते हैं कभी संसार में आते हैं। इस प्रकार आवागमन में फंसे रहते हैं जो अनन्यभक्त मेरा ध्यान करते हुए मेरी उपासना करते हैं उन नित्य योगियों को मैं इस संसार में धन जन पुत्र पौत्रादि देकर उनकी रक्षा करता हूं और फिर आवागमन से उन्हें छुड़ा देता हूं। हे कौन्तेय ! अन्य देवताओं के भक्तवर्ग जो उनमें श्रद्धा करके उनकी उपासना करते हैं, वे मेरी विधि-हीन पूजा है। इससे वे भक्त मुक्ति को नहीं पाते हैं। मैं सब यज्ञों का भोग करने वाला और सब का प्रभु हूं। जो मुझको

ऐसा प्रभु ईश्वर नहीं जानते हैं, वे आवागमन से नहीं छूटते हैं। देवताओं के पूजने वाले देवगति को प्राप्त होते हैं। पितरों के पूजक पितर लोक जाते हैं। भूतों के पूजने वाले भूतलोक जाते हैं और मुझको पूजने वाले मेरे परमानन्दस्वरूप अचल पद को पाते हैं। जो कोई भक्तिपूर्वक पत्र पुष्प फल आदि भक्ति युक्त मेरे को निवेदन करता है, उनकी दी हुई वस्तु को मैं प्रसन्नता से अंगीकार करता हूं। हे कौन्तेय! जो कुछ तुम करते हो, देते हो, तपस्या करते हो वह मुझको अर्पण करो। ऐसा करने से कर्म बन्धन रूप शुभाशुभ फलों से बच जाओगे और संन्यास योग में युक्त होकर मुक्ति के सत मुझको अवश्य पाओगे। हे अर्जुन! मैं सम्पूर्ण प्राणियों में समान रूप हूं न कोई मेरा शत्रु है न कोई मेरा मित्र है, जो मुझको भक्तिपूर्वक भजता है वही मुझमें

है और मैं उसमें हूं। यदि कोई अत्यन्त दुराचारी मनुष्य अन्य देवताओं की पूजा न करके मेरी पूजा करता है तो वह अनन्य भक्त शीघ्र हो दुराचारी से धर्मात्मा हो जाता है और निरन्तर शांत रहता है। हे पार्थ ! कोई कैसा भी पापात्मा क्यों न हो, चाहे क्षत्री हो, वैश्य हो या शूद्र हो, यदि मेरा आश्रय ले तो उत्तम गति को प्राप्त होता है और फिर पुण्यात्मा ब्राह्मण और भक्त राजर्षि इनका तो कहना ही क्या है ! इसलिए हे अर्जुन ! ओं नमो भगवते वासुदेवाय ऐसा मेरा भजन स्मरण करें। मेरा साथ ऐसा मिलेगा जैसे पानी के साथ पानी मिल जाता है। इसी प्रकार मेरे साथ अभेद हो, ओं नमो नारायण यह कहो

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे कृष्णार्जुनसंवादे
प्रकृतिभेदो नाम नवमोऽध्यायःसमाप्तः ॥

———

नौवें अध्याय का माहात्म्य

एक समय लक्ष्मी ने पूछा–हे नारायणजी ! गीता के नवें अध्याय के माहात्म्य को कहो हमारी सुनने की बड़ी इच्छा है । भगवान् ने कहा–हे लक्ष्मी ! सुनो, दक्षिण देश में संशर्मा नाम का एक शूद्र रहता था। वह मांस मदिरा खाने वाला और पर-स्त्रीगामी था। वह एक दिन मदिरापान कर सोया था कि रात्रि में वह मर गया। मरने के बाद उसे प्रेत योनि मिली तब एक वृक्ष पर रहने लगा। उसी नगर में एक भिक्षुक ब्राह्मण भी रहता था, वह दिन को भिक्षा मांग कर लाता था। उसकी स्त्री बड़ी कृपण थी, कभी किसी को कुछ न देती थी। समय पाकर ब्राह्मण-ब्राह्मणी दोनों ने तन त्याग किया और उसी वृक्ष पर ये दोनों भी पिशाच-पिशाचिनी बनकर रहने लगे। बहुत दिन बाद पिशाचिनी ने कहा हे पिशाच ! तुझे कुछ पिछले जन्म की भी खबर है। तब पिशाच ने कहा–मैं पहले जन्म में ब्राह्मण था। पिशाचिनी ने कहा–तुमने कौन-सा ऐसा कर्म किया था जिससे पहले

जन्म की बात याद है। पिशाच ने कहा मैंने एक ब्राह्मण के मुख से अध्यात्म ज्ञान को सुना है, जिससे अपने पूर्वजन्म को जानता हूँ। पिशाचिनी ने कहा–वह ब्राह्मण कौन था ? अध्यात्म कौन कर्म है ? पिशाच ने कहा–मैंने कोई शुभ कर्म नहीं किया है, केवल गीता के एक श्लोक को सुना है जो श्री कृष्णजी ने अर्जुन को सुनाया था। ऐसा कह वह श्लोक अर्थ सहित पिशाचिनी को सुनाने लगा, बस श्लोक को सुनते ही एक और प्रेत उस वृक्ष से उतर पड़ा और कहा कि जो बातें तुम आपस में करते हो वे मुझसे भी कहो, ब्राह्मण पिशाच ने वह श्लोक उस प्रेत को भी सुनाया। उससे तीनों प्रेतों की योनि छूट गई और विमान पर बैठकर विष्णु लोक को गये। यह गीता के नवम अध्याय का माहात्म्य है। जो इस माहात्म्य को भक्तिपूर्वक सुनते हैं वे सदा वैकुण्ठ में निवास करते हैं।

॥ इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वरसंवादे उत्तराखंडे गीता माहात्म्य नाम नवमोऽध्यायः समाप्त ॥

—

अथ दसवां अध्याय

हे महाबाहो ! मेरी और उत्तम-उत्तम बातें सुनो । मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हूं, इसलिए तेरी भलाई के लिए कहता हूं । मेरे जन्म को देवता ऋषि कोई भी नहीं जानते हैं, क्योंकि मैं सम्पूर्ण देवता और ऋषियों का आदि हूँ । वे सब मुझसे उत्पन्न हुए हैं । जो मुझे अज, अनादि और सम्पूर्ण लोकों का ईश्वर जानते हैं वे मनुष्यों में मूढ़ता रहित हैं और सब पापों से छूट जाते हैं । हे अर्जुन ! बुद्धि, ज्ञान, अव्याकुलता, क्षमा, सत्य,दम, सुख दुःख उत्पत्ति, लय, भय और अभय, अहिंसा, ममता, सन्तोष, शम अपकीर्ति ये सब प्राणियों के भाव पृथक् पृथक् मुझसे ही होते हैं । वशिष्ठ आदि सप्तर्षि सनकादि चारों मुनि तथा चौदहों मनु, ये सब मेरे मन में प्रकट हुए हैं । इन्हींसे सब प्रजा उत्पन्न हुई है । जो

पुरुष मेरी इस विभूति को तत्त्व से जानते हैं, वे निश्चय योग से मुक्त होते हैं। मैं ही सबकी उत्पत्ति का कारण हूं और मेरे ही द्वारा सबकी प्रवृत्ति होती है। यह जानकर विवेकी पुरुष मेरा स्मरण करते हैं। वे अहर्निश मेरे में ही चित्त लगाये रहते हैं और अपने प्राणों को मुझे अर्पण कर देते हैं। इस प्रकार वे स्वयं नित्य संतुष्ट व आनन्द में मग्न रहते हैं और दूसरों को भी करते हैं। जो इस रीति से निरन्तर मेरे ध्यान में लगे रहते हैं और प्रीति पूर्वक भजन करते हैं उनको मैं ऐसी बुद्धि देता हूं, कि वे मुझको प्राप्त होवें। ऐसे पुरुष पर अनुग्रह करने के लिए आत्मभाव में स्थित जो मैं हूं सो प्रकाशमान दीपक से उनके अज्ञान से उत्पन्न हुए अन्धकार को नष्ट कर देता हूं। यह सुनकर अर्जुन ने कहा हे श्रीकृष्ण आप परब्रह्म हो परम पवित्र हो नित्य पुरुष

हो आदिदेव हो, अज हो, विभु हो संपूर्ण ऋषि देवर्षि नारद असित देवल वेदव्यास आदि आपको परम पुरुष अज और विभु कहते हैं और आप भी ऐसा ही कहते हैं। हे केशव! जो कुछ आप कहते हैं और जो कुछ ये ऋषिगण कहते हैं इन सबको मैं सत्य ही मानता हूं। हे भगवन्! देवता और दानव आपकी उत्पत्ति के कारण को नहीं जानते। हे पुरुषोत्तम, हे प्राणियां के ईश्वर, हे प्राणियों के नियन्ता, हे देवों के देव, हे जगत्पते! आप ही अपने को जानते हो, आपको दूसरा कोई नहीं जानता। हे श्री कृष्ण! आपकी जो दिव्य विभूतियाँ हैं उनको मुझसे कहिए जिनके द्वारा आप इन लोगों में व्याप्त होकर स्थिर हो। हे श्रीकृष्ण! आपका निरन्तर ध्यान करता हुआ मैं आपको किस तरह जानूं! हे भगवन् आपका ध्यान किन-किन भावों में करना योग्य है। हे जनार्दन

आप अपनी प्राप्ति का उपाययोगेश्वर और विभूति विस्तारपूर्वक मुझे सुनाइये। इस अमृत रूपी वाणी को सुनते सुनते मेरा मन-तृप्त नहीं होता है। यह सुन श्रीकृष्णजी बोले–हे अर्जुन! मेरी जो दिव्य विभूतियां हैं उनमें से मुख्य-मुख्य तुम्हें सुनाता हूँ, क्योंकि मेरी सम्पूर्ण विभूतियों का अन्त नहीं है। हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में मैं ही बसता हूं। अन्तर्यामी मैं ही हूं। उनकी उत्पत्ति, पालन नाश करने वाला मैं हूँ। बारह सूर्यों में पौष मास का विष्णु सूर्य हूँ। मैं प्रकाशमान वस्तुओं में सूर्य, उन्चास पवनों में मारीच नाम का वायु हूँ, तारागणों में चन्द्रमा, वेदों में साम वेद, देवताओं में इन्द्र, इन्द्रियों में मन और प्राणियों में चेतना शक्ति मैं ही हूँ। रुद्रों में शंकर, यक्ष-राक्षसों में कुबेर, आठ वसुओं में अग्नि और पर्वतों में सुमेर, पुरोहितों

में बृहस्पति, सेनापतियों में शिवजी का पुत्र स्वामी कार्तिकेय और सरोवरों में सागर, महर्षियों में भृगु, वाणी में एक अक्षर (ॐ) यज्ञों में जपयज्ञ और स्थावरो में हिमालय, वृक्षों में पीपल, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि मैं ही हूँ। घोड़ों में उच्चैःश्रवा, हाथियों में ऐरावत और मनुष्यों में राजा, अस्त्रों में वज्र, गौओं में कामधेनु, उत्पन्न करने वालों में कामदेव, सर्पों में वासुकि, नागों में शेषनाग, जलचरों में वरुण, पितरों में अर्यमा, शासन करने वालों में यम मैं ही हूँ। दैत्यों में प्रहलाद, निगलने वालों में काल, मृगों में सिंह, पक्षियों में गरुड़, पवित्र करने वालों में पवन, शस्त्रधारियों में परशुराम, मछलियों में मगर और नदियों में गंगा, सृष्टि का आदि मध्य अवसान मैं ही हूं।

विद्याओं में अध्यात्म विद्या और वादियों में सिद्धान्त, अक्षरों में अकार, समासों में द्वन्द्व। चारों ओर मुखवाला सबका उत्पन्न करने वाला, सबका भरण पोषणकर्त्ता तथा सबका संहारक मैं हूं। स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाणी स्मृति, मेधा, धृति, शांति और क्षमा, सामवेद के मन्त्रों में बृहत्साम, छन्दों में गायत्री छन्द, मासों में मार्गशीर्ष और ऋतुओं में बसन्त मैं हूं। कपट में जुआ, तेजस्वियों में तेज, विजय कर्ताओं में विजयी, उद्यमियों में उद्यम और सत्य वालों में सत्य मैं हूं। यादवों में वसुदेव, पाण्डवों में धनंजय, मुनियों में व्यास, कवियों में शुकदेव मैं हूं। जीतने की इच्छा करने वालों में नीति, गुप्त करने वाले उपायों में मौन, तत्त्वज्ञानियों में ज्ञान मैं ही हूं। हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणियों के उत्पन्न करने का बीज भूत कारण मैं ही हूं। चराचर

प्राणियों में ऐसा कोई भी नहीं है जिसमें मैं नहीं हूं। हे परंतप! मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है और न कोई उनका वर्णन कर सकता है। मैं सर्वव्यापी हूं, यह संक्षिप्त वर्णन मैंने किया है। यह संक्षेप से एक ब्रह्माण्ड कहा है ऐसे असंख्य हैं। यह सब जगत् मेरे तेज से उत्पन्न हुआ जान। इन सब बातों को भिन्न-भिन्न जानने से तेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा। तू इतना ही जान लेकिन मैंनेइस संपूर्ण जगत्को अपने एक अंशसे धारणाकर रखाहै।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णअर्जुन संवादे
अक्षरब्रह्मयोगो नाम दशमोऽध्याय: ॥

दसवें अध्याय का माहात्म्य

श्री भगवान्‌जी बोले—हे लक्ष्मीजी! यह दसवें अध्याय का माहात्म्य कहता हूँ। काशी नगर में एक धीरजी नामक धर्मात्मा हरि-भक्त ब्राह्मण रहता था। एक दिन वह विश्वेश्वर महादेवजी के दर्शन

को गया। गरमी की ऋतु थी वह धूप से व्याकुल हो चक्कर खाकर मन्दिर के पास गिर पड़ा। इतने में भृगो नामक गण आया उसने देखा कि ब्राह्मण मूर्च्छित पड़ा है। उसने जाकर शिवजी से कहा। महादेवजी सुन चुप हो रहे। उस गण ने फिर जाकर कहा हे स्वामिन्! यह चरित्र मैंने देखा है, इसने कौनसा पुण्य किया है जिससे पवित्र जगह मृत्यु पाई है, चारों बातें इसकी भली आ बनी हैं। एक काशी क्षेत्र, गंगाजी का स्नान, सन्तों तथा विश्वेश्वरजी का दर्शन, अन्न का छोड़ना, एकादशी का दिन। कृपाकर यह बताओ कि इसने कौन सा पुण्य किया था। तब महादेवजी ने कहा हे-भृगो! इसके जन्म का हाल मैं कहता हूं सो सुनो। एक दिन कैलास पर्वत पर पार्वती और हम बैठे थे। एक हंस मेरे दर्शन को आया, वह हंस ब्रह्मा का वाहन था ब्रह्मलोक से मानसरोवर को जाता था, उस सरोवर में सुन्दर कमल फूले थे। वह एक कमल को लाँघने लगा, उसकी परछाईं पड़ी। वह हंस एकदम काला हो गया और बेहोश हो आकाश से

पृथ्वी पर गिरा। उसी मार्ग में एक गरा आया। हंस को गिरा देख-कर गरा ने कहा हे स्वामिन् ! यह आपके दर्शन को आया था सो श्याम वर्ण होकर गिर पड़ा है। गरा मेरी आज्ञा से हंस को ले आया। मैंने पूछा हे हंस ! तू श्याम वर्ण क्यों हुआ ? हंस ने कहा-हे प्रभुजी ! मैं यह नहीं जानता कि मैं किस कारण से काला हो गया हूँ। यह सुन शिवजी को आकाशवाणी हुई, हे शिवजी ! कमलिनी से पूछो वह कहेगी। कमलिनी ने आकर कहा कि पिछले जन्म में मैं पद्मा-वती नामक अप्सरा थी। श्री गंगाजी के किनारे एक ब्राह्मण स्नान करके गीता के दसवें अध्याय का पाठ किया करता था। एक दिन इन्द्र का सिंहासन हिला। इन्द्र ने मुझे आज्ञा दी तू जाकर उस ब्राह्मण की तपस्या भंग कर ! मैं ब्राह्मण के पास गई। ब्राह्मण ने मुझे शाप दिया कि हे पापिनी ! तू कमलिनी हो जा। ब्राह्मण के शाप से मैं कमलिनी हो गई। अब मैं गीता के दसवें अध्याय का पाठ करती हूँ उसी से मेरा तेज है। मुझको लाँघने वाला काला होकर अचेत हो जाता है। हंस

ने कहा–मेरा श्याम वर्ण से श्वेत वर्ण कैसे होवे और तू कमलिनी की देह से छूट देव देही कैसे पावे। तब कमलिनी ने कहा, यदि कोई गीता के दसवें अध्याय का पाठ सुनावे तब हमारा-तुम्हारा दोनों का उद्धार होगा। फिर गीता के दसवें अध्याय का पाठ उस हंस और कमलिनी ने सुना, तब उसी समय उन दोनों का उद्धार हुआ। हंस अपने श्वेत वर्ण को प्राप्त हुआ और कमलिनी देवकन्या हुई।

इति श्री पद्मपुराण सती ईश्वरसंवादे उत्तराखण्डे गीतामाहात्म्यानाम दशमोऽध्यायः समाप्तः॥

———

अथ ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान् की विभूतियों के वर्णन को सुनकर अर्जुन ने कहा कि हे कृष्ण! आपने मेरे ऊपर अनुग्रह करके जो महागूढ़ अध्यात्म ज्ञान सुनाया है इससे मेरा सब मोह दूर हो गया है। हे कृष्ण! मैंने प्राणियों की उत्पत्ति और प्रलय का वृत्तान्त आपके मुख से विस्तारपूर्वक सुना और आपका लक्ष्य माहात्म्य भी सुना। हे

पुरुषोत्तम ! मैं ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज इन छह गुणों से युक्त आपके रूप का दर्शन करना चाहता हूं । यदि आप ये समझते हो कि मैं आपका वह रूप देख सकता हूं तो हे योगेश्वर ! आप मुझे अपने उस अविनाशी रूप का दर्शन दीजिये । अर्जुन की बात सुन श्रीभगवान्‌जी बोले-हे अर्जुन ! तू मेरे सैकड़ों-हजारों रूपों को देख । ये मेरे अनेक प्रकार के दिव्य रूप हैं । ये सब अनेक वर्ण और अनेक प्रकृतियों के हैं। हे अर्जुन ! मेरी देह में सूर्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार और मरुद्‌गणों को देख और उन आश्चर्ययुक्त बातों को देख जो तूने आगे कभी नहीं देखी हैं । हे गुडाकेश ! मेरे इस शरीर में चराचर सम्पूर्ण जगत को एक ही स्थान पर इकट्ठा देख ले और भी जिन-जिन बातों को तू देखना चाहता है वे सभी देख । तू अपने इन

नेत्रों से मुझको न देख सकेगा इसलिए मैं तुझे दिव्य नेत्र देता हूं इनसे तू मेरे षट्गुण सम्पन्न रूप को देख। धृतराष्ट्र से संजय ने कहा कि हे राजन्! ऐसा कह कर महायोगेश्वर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपना परम ऐश्वर्ययुक्त विराट् रूप दिखाया। उसमें अनेक मुख और अनेक नेत्र हैं। अद्भुत दर्शन हैं और अनेक प्रकार के दिव्य आभूषण हैं, अनेक प्रकार के दिव्य आयुध हैं। हे धृतराष्ट्र! वह दिव्यमाला और दिव्य वस्त्रधारी है! अनेक प्रकार के चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों से लिप्त है। अनेक प्रकार के आश्चर्य को उत्पन्न करने वाला प्रकाशयुक्त और अन्तर रहित है। उसमें चारों ओर मुख हैं, आकाश में सहस्रों सूर्यों का प्रकाश एक साथ हो जाय तो भी उस विश्व स्वरूप भगवान् की कान्ति के समान कदाचित् हो

सकता है। अर्जुन ने उस देव शरीर में एक ही स्थान पर अनेक प्रकार से स्थित सम्पूर्ण जगत् को देखा है। इसका दर्शन करके अर्जुन को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसके शरीर के रोम-रोम खड़े हो गये और वह सिर झुका कर हाथ जोड़ श्रीकृष्णजी से कहने लगा—हे प्रभु! मैं आपकी देह में सम्पूर्ण देवताओं तथा सब प्राणियों के समूह को तथा कमल पर आसन मारे हुए ब्रह्मा को, सब ऋषियों को तथा सब दिव्य सर्पों को देखता हूं। हे विश्वेश्वर! आपकी देह में सब जगह मुझे अनेक भुजा, अनेक उदर, अनेक मुख, अनेक नेत्र और अनन्त रूप दिखाई देते हैं। आपका आदि, मध्य, अन्त कहीं भी दिखाई नहीं देता। मुझे ऐसा दिखाई देता है कि किरीट गदा और चक्र धारण कर रहे हैं। तेज पुंज हैं, चारों ओर दीप्तमान हैं,

आपका अग्नि और सूर्य के समान तेज है कि देखने में आँखें चकाचौंध हो जाती हैं। अपरमित रूप दिखाई देते हैं। हे कृष्ण! मुमुक्षु जनों से जानने योग्य आप ही अक्षर परब्रह्म हो, इस संसार के आधार आप ही हो। सनातन धर्म के अक्षर तथा विनाश रहित भी आप हो। आप ही सनातन पुरुष हो। आपका आदि, मध्य, अन्त कुछ नहीं है। आपका पराक्रम अनन्त है। आपकी भुजाएं असंख्य हैं। सूर्य, चन्द्रमा आपके नेत्र हैं, प्रज्वलित अग्नि के समान आपका मुख है। आपके इस भयानक रूप को देखकर लोक डरते हैं। हे महात्मन्! आकाश और पृथ्वी के मध्य में जो यह बड़ा भारी अन्तरिक्ष (पोल) है, इस सबमें आप अकेले व्याप्त हो रहे हैं। हे कृष्ण! देवताओं के समूह भय के मारे आपकी शरण आये हैं, कितने भयभीत होकर दूर से हाथ

जोड़ आपकी प्रार्थना करते हैं। ये महर्षि और सिद्धों के झुण्ड स्वस्तिवाचन करके अनेक प्रकार से स्तुति करते हैं। हे कृष्ण! एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, अष्टवसु सांध्य नामक देवता, विश्वेदेवा, अश्विनीकुमार, उन्चास मरुत, उष्मपा नामक पिता और गन्धर्व, यक्ष, देवता, सिद्धों के समूह ये सब विस्मित होकर तुम्हें देखते हैं। हे महाबाहो! आपके असंख्य मुख और नेत्र हैं। आपकी असंख्य भुजाएं, जंघा, चरण और असंख्य उदर हैं। असंख्य दाढ़ों से आपका रूप विकराल दिखाई पड़ता है। इसको देख कर सब लोग डर गये हैं, मैं डर के मारे व्याकुल हो रहा हूं। यह आपका शरीर इतना बड़ा है कि आकाश को स्पर्श करता है। बड़ा प्रकाशमान है। अनेक वर्णों से युक्त है। इसमें बड़ा विस्तीर्ण मुख है, बड़े-बड़े नेत्र हैं। इसको देखकर मैं अत्यंत

व्याकुल हो रहा हूं। किसी प्रकार से भी धीरज शान्ति ग्रहण नहीं होती। दांतों से भयंकर प्रलय काल की अग्नि के समान आपका मुख देखकर ऐसा भयभीत हो गया हूं कि मुझे दिशाओं का ज्ञान नहीं रहा है। न मुझे शांति प्राप्त होती है। इससे हे भगवन्! मुझ पर प्रसन्न हूजिये। हे कृष्ण! धृतराष्ट्र के सब पुत्र सम्पूर्ण राज समूहों के साथ आपके मुख में प्रवेश करते दिखाई देते हैं और भीष्म, द्रोणाचार्य, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न आदि भी आपके मुख में प्रवेश करते दिखाई देते हैं। ये सब आपके डाढ़ वाले मुख में जल्दी-जल्दी प्रवेश कर रहे हैं। इसमें कितनों के ही शिर चूर्ण हो गये हैं। ये आपके दांतों में उलझ रहे हैं। जैसे नदियों की अनेक शाखाएं समुद्र की ही ओर दौड़ती हैं, वैसे ही ये नर वीर तुम्हारे जाज्वल्यमान मुख में प्रवेश करते



भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र का अर्जुन को अपना विराट् रूप दिखलाकर
मोह और भ्रम दूर करना



दिखाई देते हैं। हे कृष्ण! जैसे अत्यन्त वेगवती पतंग नाश के लिए बड़े वेग से जलती हुई अग्नि में घुसी चली जाती है, ऐसे ही ये सब लोग नाश के लिए आपके मुख में घुसे चले जा रहे हैं। हे कृष्ण! अपने प्रज्वलित मुखों में सम्पूर्ण लोकों को चारों ओर से चाटते हुए ग्रसे लेते हो और आपकी उग्र कान्ति सब जगत् को अपने तेज से परिपूरित करके तृप्त कर रही है। हे कृष्ण! तुम ऐसे उग्ररूप वाले कौन हो, सो कहो। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूं। मैं आपकी प्रवृत्ति नहीं जानता हूं इससे आदि पुरुष आपको जानना चाहता हूं। हे देवश्रेष्ठ! कृपा करके मुझे बतलाइये श्रीकृष्ण बोले–हे अर्जुन! इस समय इन लोकों का काल मैं हूं। मैं इन लोकों का संहार करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूं। ये बड़े-बड़े योधा, जो सेना में खड़े हैं, इन-

को तू मारेगा नहीं तो भी ये मरेंगे ही। इससे हे अर्जुन ! तू कमर बाँध कर खड़ा हो जा और शत्रुओं को जीतकर कीर्ति को प्राप्त कर, सब समृद्ध राज्य को भोग। ये सब तो पहले ही मैंने मार रखे हैं। तू केवल निमित्तमात्र है। द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण आदि बड़े-बड़े योधा मुझसे मारे हुए हैं। तू इनको मार, दुःखी होने की बात नहीं है। तू समर में शत्रुओं को अवश्य जीतेगा। संजय ने धृतराष्ट्र से कहा कि राजन् ! केशव की ऐसी बातें सुनकर अर्जुन कांपने लगा और हाथ जोड़ कर बार-बार नमस्कार करने लगा। डर के मारे व्याकुल होकर नमस्कार कर गद्-गद् वाणी से श्रीकृष्ण से कहने लगा--हे हृषीकेश ! आपका प्रभाव अति अद्भुत और कीर्ति अतुलनीय है, इसीसे यह सब जगत हर्षित होता है, आप में अनुराग करता है,

राक्षस भयभीत होकर दिशाओं में भागे फिरते हैं, सिद्धों के समूह आपको नमस्कार करते हैं। हे महात्मन्! हे अनन्त हे देवेश! जगन्निवास! तुमको सब लोक नमस्कार क्यों न करें, क्योंकि आप तो ब्रह्मा से भी बड़े और सबके आदि कर्त्ता हैं तथा सत् असत् के मूल कारण, अर्थात् अविनाशी हैं, इससे सबका आपको नमस्कार करना योग्य ही है। हे कृष्ण! आप आदि देव और पुरातन पुरुष हो, इस सम्पूर्ण सृष्टि के लिए स्थान हो सम्पूर्ण विश्व के ज्ञाता हो। जो कुछ जानने योग्य वस्तु है आप ही हो, मुनियों के परमधाम आप ही हो। यह सम्पूर्ण विश्व आपके अनन्त रूप से व्याप्त है। हे कृष्ण! वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, ब्रह्मा और ब्रह्मा के पितामह भी आप ही हैं, इससे आपको हजारों बार नमस्कार है। हे सर्वेश्वर! आपको सम्मुख से नम-

स्कार है तथा पीछे से नमस्कार है। चारों ओर से नमस्कार है। आप अनन्त वीर्य और अनन्त पराक्रम से युक्त हो सबमें व्यापक हो। इसी से आप सर्व हो, मैं आपको अपना सखा जानकर जो आपसे—हे यादव, हे कृष्ण, ह सखा यह ढिठाई से कहा करता था, सो मैं आपको महिमा को नहीं जानता था। यह मेरा बड़ा प्रमाद था अथवा स्नेह के वशीभूत हो मैं ऐसा कहा करता था। हे अच्युत! खेलने, सोने, बैठने व भोजन करने के समय एकान्त में या बहुत लोगों के सम्मुख जो मैंने आपकी हँसी की है और इस प्रकार की हँसी से आप का अनादर किया है सो मैं क्षमा मांगता हूं। आपका प्रभाव अप्रेमय है। हे प्रभावशालिन्! आप इस चराचर जगत् के पालनकर्ता, पिता, पूज्य और महान् आप ही गुरु हो। तीनों

लोक में आपके बराबर कोई नहीं है। फिर अधिक कोई कैसे हो सकता है ? हे कृष्ण ! आप ईश्वर हो, स्तुति के योग्य हो। मैं आपको साष्टांग दण्डवत् करता हूं। मुझ पर प्रसन्न होइए। हे देव ! मेरे अपराधों को सहन कर ऐसे क्षमा कर सकते हैं, जैसे पिता पुत्र के, मित्र मित्र के और पति पत्नी के अपराधों को सहन करता है। हे कृष्ण ! आपका अद्भुत रूप पहले कभी नहीं देखा था। इस अद्भुत रूप को देखकर मेरा मन बड़ा हर्षित हुआ है और भय के मारे मेरा मन व्याकुल हो रहा है। आप मुझको वही अपना पहला रूप दिखाइये। हे देवेश ! हे जगन्निवास ! आप मुझ पर प्रसन्न हों। हे विश्वमूर्ते ! मैं आपका वही किरीट मुकुटयुक्त गदाधारी रूप देखना चाहता हूं, इसलिए वही पहले के समान चतुर्भुजी रूप धारण कर लीजिये।

यह सुनकर श्री भगवान् बोले--हे अर्जुन ! मेरा यह तेजोमय रूप अनन्त और आद्य रूप है। इसको तेरे सिवा अब तक किसी ने भी नहीं देखा है। तुझ पर अत्यन्त प्रसन्न होकर मैंने आत्म-योग से तुझे दिखाया है। हे कुरुश्रेष्ठ ! जो कोई चार वेद पढ़े, यज्ञ, साधन, दान, अग्निहोत्रादि कर्म तथा उग्र तप करके देखना चाहे तो भी नहीं देख सकता। हे अर्जुन ! मेरे इस घोर रूप को देखकर तू क्यों व्यथित होता है। व्याकुल मत हो, अपनी मूढ़ता को देख और निडर होकर प्रसन्न चित्त से मेरे इस पहले रूप को फिर देख। संजय ने कहा–हे धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्ण ने यह कहकर अपना चतुर्भुज रूप फिर दिखाया और डरे हुए अर्जुन को ढाढ़स दिया। तब अर्जुन ने कहा–हे जनार्दन ! आपका यह शान्त मनुष्य रूप देखकर अब मैं सावधान हो गया हूं और अब

मेरा चित्त शान्त हो गया। सब भय निवृत्त हो गया है। श्री कृष्ण बोले–हे कौन्तेय! तूने मेरा यह रूप देखा है, उसको देखने को देवता भी तरसते रहते हैं। हे परन्तप! मेरा जो ऐसा महान् रूप है इसको मनुष्य अनन्य भक्ति से जान सकते हैं, देख सकते। और तत्त्व ज्ञान से इसमें लीन हो सकते हैं। हे अर्जुन! जो कोई मनुष्य मेरी ही प्रीति के लिए लौकिक और वैदिक कर्म करते हैं, मुझको अपना पुरुषार्थ मानते हैं, मुझमें भक्ति रखते हैं, सब सांसारिक विषयों से मुख मोड़ चुके हैं और सम्पूर्ण प्राणीमात्र से बैर छोड़ प्रीति रखते हैं, वे ही मुझको प्राप्त हो सकते हैं।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे

विश्वरूप दर्शनयोगो नाम एकादशोऽध्यायः।

—❀❀—

ग्यारहवें अध्याय का माहात्म्य

श्री भगवान् बोले-हे लक्ष्मीजी ! अब ग्यारहवें अध्याय का माहात्म्य सुनो। एक तुङ्गभद्र नामक नगर था जिसके राजा का नाम सुखानन्द था। वहां एक ब्राह्मण बड़ा धनवान, विद्वान् पण्डित रहता था और नित्य श्री लक्ष्मीनारायणजी के मन्दिर में गीता के ग्यारहवें अध्याय का पाठ करता था और राजा भी यहां नित्य लक्ष्मीनारायण की सेवा करता था और पाठ भी नित्य सुनाता था। एक दिन कुछ सन्त तीर्थ यात्रा करते-करते उस नगर में पहुँचे। राजा ने सम्मान सहित सन्तों को टिकाया और भोजन करांया, भोजन करके सन्त बहुत प्रसन्न हुए। प्रातःकाल राजा अपने पुत्र और मित्रों सहित उनके दर्शन को गया और सन्तों के महन्तजी से धर्म की बातचीत करने लगा और राजा का पुत्र वहां खेलने लगा। वहां प्रेत रहता था, उस प्रेत ने राजा के पुत्र को मार डाला, चाकरों ने राजा को इस बात की खबर करी। राजा बोला हे सन्तजी ! आपके दर्शन का मुझे अच्छा फल

मिला, मेरा एक पुत्र था सो भी प्रेत ने मार डाला। राजा, महन्त सभी प्रेत के पास गये और ब्राह्मण ने प्रेत से कहा–अरे प्रेत! तू इस लड़के पर कृपा दृष्टि कर जो यह जी उठे और तू अपने पूर्व-जन्म की बात कह। तब प्रेत बोला—मैं पूर्वजन्म में ब्राह्मण था, इस ग्राम के बाहर हल जोतता था। वहां एक घायल ब्राह्मण जिसके अंगों से खून निकल रहा था खेत में आकर गिर पड़ा एक चील उसका मांस नोच कर खाने लगी। मैं बैठा देखता रहा, इतने में एक और ब्राह्मण आया और उसने यह हाल देखकर मुझसे कहा—अरे हल जोतने वाले ब्राह्मण! तेरे कर्म चांडाल जैसे हैं। अरे निर्दयी! तेरे खेत में ब्राह्मण का मांस चील नोच-नोच खा रही है तू आंखों से अंधा है जो छुड़ाता नहीं है सो तू मेरे शाप से प्रेत योनि पावेगा। तब मैंने उसके चरण पकड़ कर कहा कि हे देव! मेरा उद्धार कैसे होगा, तब उस ब्राह्मण ने कहा तुझको जब कोई गीता के ग्यारहवें अध्याय का पाठ सुनावेगा, तब तेरा उद्धार होगा। ब्राह्मण ने गीता के ग्यारहवें अध्याय

का पाठ प्रेत को सुनाया और उस पर जल छिड़का तब तत्काल प्रेत की देह छूट कर उसने देव देह पाई और राजा का मरा हुआ पुत्र भी भगवान् का नाम लेता हुआ खड़ा हो गया। स्वर्ग से विमान आया और प्रेत उसमें बैठकर स्वर्ग को चला गया। राजा का पुत्र भी गीता का पाठ सुनने से भक्तपरायण होकर उसी विमान में बैठकर स्वर्ग को गया। राजा ने भी ग्यारहवें अध्याय का पाठ श्रवण किया। इस प्रकार वह परम गति को प्राप्त हुआ।

इति श्री पद्मपुराणे उत्तराखंडे सती-ईश्वरसंवादे गीता माहात्म्य नाम एकादशोऽध्याय समाप्तम् ॥

—

अथ बारहवाँ अध्याय

अर्जुन ने पूछा जो भक्त सदैव योगयुक्त हो आपकी उपासना विधिपूर्वक करते हैं और वे पुरुष जो परमब्रह्म को भजते हैं इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है। श्री भगवान् बोले जो मुझमें मन लगाकर श्रद्धापूर्वक मुझे भजते हैं, वे उत्तम योगी हैं और जो

इन्द्रियों को संयम कर सर्वत्र समदृष्टि रखकर प्राणियों के हित में लगे हुए अकथनीय, अव्यक्त सर्वव्यापी अचिन्तनीय निर्विकार, अचल, ध्रुव अक्षर का भजन करते हैं वे भी मुझे प्राप्त होते हैं, अव्यक्त में जिनका चित्त लगा हुआ है वे कष्ट अधिक पाते हैं क्योंकि अव्यक्त गति को प्राणी कष्ट से पाते हैं हे पार्थ ! जो प्राणी अपने सब कार्य को मेरे अर्पण करके मेरी शरण में आते हैं मैं उन शरण में आये हुए भक्तों का थोड़े ही काल में संसार सागर से उद्धार कर देता हूं । मुझमें ही मन और बुद्धि रखो तब तुम मुझमें निवास करोगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं । हे धनंजय ! यदि इस प्रकार तुम मुझमें अपने चित्त को लगाने में समर्थ न हो तो अभ्यास योग द्वारा मुझे पाने के लिए बारम्बार यत्न करो । यदि अभ्यास भी न कर सको तो मेरे

उद्देश्य से व्रत करो, मेरे लिए तुम कर्म करोगे तभी तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी, यदि ऐसा भी न कर सको तो मनको रोककर अनन्य भाव से मेरी शरण आओ और फल की आशा छोड़ कर्म करो क्योंकि अभ्यास से ज्ञान, ज्ञान से ध्यान और ध्यान से भी कर्मों का फल त्यागना श्रेष्ठ है। त्याग से तुरन्त शांति प्राप्त होती है। जो किसी से द्वेष नहीं करता, सबका मित्र है, दयावान् है, ममता और अहंकार जिसमें नहीं है, जो क्षमावान् संतोषी है, स्थिर चित्त है, इन्द्रियों को वश में रखता है, दृढ़ विश्वासी है, मुझमें अपना मन और बुद्धि लगाये हुए है, जिससे न लोगों को भय है न लोगों से जो डरता है, हर्ष, ईर्ष्या दुष्टों से भय और विषाद से जो रहित है, जो कुछ मिले उसी में संतुष्ट, पवित्र, दक्ष, निष्पक्ष दुःख रहित फल की आशा त्याग कर कर्म करने वाला मेरा

भक्त है, वह मुझे प्रिय है। जो लाभ से प्रसन्न हो, किसी से द्वेष न करे, भली-बुरी वस्तु पाने का हर्ष-शोक न करे, शुभ और अशुभ इन दोनों का त्यागी हो, जिसे शत्रु-मित्र, मान-अपमान, सर्दी-गर्मी, दुःख-सुख समान हैं, जो वासना से रहित है, जो निन्दा तथा स्तुति को समान जानता है, मौनी है, जो यह नहीं समझता कि यह मेरा घर है, वह मेरा प्यारा है, जो मुझमें श्रद्धा करके मुझे मान कर इस अमृत के समान कल्याणकारी धर्म का आचरण मेरे उपदेश के अनुसार करते हैं, ऐसे भक्त मुझे अत्यधिक प्रिय हैं।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे कृष्णार्जुनसंवादे
विश्वरूप दर्शनयोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥

बारहवें अध्याय का माहात्म्य

श्री भगवानजी बोले–हे लक्ष्मीजी ! अब बारहवें अध्याय का माहात्म्य सुनो । दक्षिण देश में एक सुखानन्द नाम का राजा रहता था । उसी नगर में विमत नाम का एक लंपट रहता था । एक गणिका से उसकी प्रीति थी । वे दोनों एक देवी के मन्दिर में जाकर मदिरापान और मांसभक्षण किया करते थे । जो कोई पूछे कि तुम यहां क्या करते हो, तो कहते हम यहां देवी की सेवा करते हैं । उसी मन्दिर में एक ब्राह्मण भी देवी की सेवा करता था । एक दिन उसने देवी की स्तुति की, देवी प्रसन्न हुई और कहा कि वर मांगो जो मांगोगे सो दूंगी । उसने धन, सन्तान सुख मांगा । देवी ने कहा–हे ब्राह्मण ! तुमने जो कुछ मांगा है सो सब तुम्हें दूंगी पर पहले इन दोनों का उद्धार कर ले । तब ब्राह्मण ने नारायणजी का तप किया भगवान्‌जी प्रसन्न हुए और गरुड़ पर चढ़कर आये और पूछा तेरी क्या कामना है । ब्राह्मण ने कहा इस लम्पट और गणिका का उद्धार

कैसे हो । श्री नारायणजी ने कहा—हे आज्ञाकारी ब्राह्मण ! गीता के बारहवें अध्याय का पाठ सुनाओ तो इन दोनों का उद्धार होगा। तब ब्राह्मण ने गणिका और लम्पट को बैठा कर गीता के बारहवें अध्याय का पाठ सुनाया। सुनते ही उन दोनों की देह छूटी और दोनों वैकुण्ठ को गये। देवी प्रसन्न हुई और कहा—हे ब्राह्मण ! आज से मेरा नाम वैष्णवी हुआ । इस पाठ को सुनते ही ऐसे कुकर्मी तर गये हैं, इससे प्रसन्न होकर इस नगरी का राज्य मैंने तुझको दिया। वह विप्र घर गया । उस राजा के सन्तान नहीं थी । राजा उस विप्र को बुलाकर राज्य देकर तप करने को गया। विप्र राज्य करने लगा। श्री नारायणजी ने कहा—हे लक्ष्मी ! यह सब बारहवें अध्याय का माहात्म्य है।

इति श्रीपद्मपुराणे सतीईश्वरसंवादे उत्तराखंडे गीतामाहात्म्यनाम द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ॥

—❀❀—

अथ तेरहवां अध्याय

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण से प्रश्न करता है—हे प्रभु! प्रकृति किसे कहते हैं, पुरुष किसे कहते हैं? किसको क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ कहते हैं, ज्ञान और क्षेत्र किसे कहते हैं? इनको कहिये। श्रीकृष्ण बोले—कौन्तेय! यह शरीर क्षेत्र कहलाता है, इसको जानने वाले को क्षेत्रज्ञ कहते हैं। सम्पूर्ण क्षेत्र में क्षेत्रज्ञ मुझको जान। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है मेरे मत से वही ज्ञान है। यह क्षेत्र कैसे रूप का है, उसमें कौन विचार होते हैं, उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई और क्षेत्रज्ञ का क्या प्रभाव है इत्यादि बातें संक्षेप में कहता हूं, सुनो। अनेक ऋषियों ने अनेक प्रकार के छन्दों में इसको बताया है। वेदों ने पृथक्-पृथक् वर्णन किया है और हेतु वाले ब्रह्मसूत्र पदों को करके भी यह ज्ञान निश्चय किया

गया है। पंच महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त, कृति दसों इन्द्रियाँ मन तथा पाँचों इन्द्रियों के विषय तथा इच्छा द्वेष सुख-दुःख संघात चेतन धृति, इनके समूह संक्षेप में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के यही विकार हैं। मान और पाखण्ड से रहित, अहिंसा, सहनशीलता, सरलता, गुरु की सेवा, पवित्रता, अपने मन का संयम, इन्द्रियों के विषय से विरक्ति अहंकाररहित और जन्म-मृत्यु, बुढ़ापा रोग, दुःखादि दोषों को देखना। पुत्र, स्त्री, गृह इत्यादि में आसक्ति न करना और इनमें अपने को सुखी दुखी न मानना और इष्ट-अनिष्ट प्राप्ति में हर्ष विषाद रहित रहना, अनन्य भाव से मेरी अनन्त भक्ति एकांत में रहना, जनसमूह में रहने से विराग सदा स्मरण रखना कि मैं परमात्मा का ही अंश हूं ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य मोक्ष

को सबसे श्रेष्ठ मानना इसे ही ज्ञान कहते हैं, इससे जो भिन्न है वह अज्ञान है। अब यज्ञ का स्वरूप वर्णन करते हैं, जिसको जानकर मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होता है। वह आदि रहित बड़े से बड़ा अकथनीय होने से न सत् ही कहा जाता है न असत् ही कहा जाता है। सब ओर उसके हाथ और चरण हैं, सब ओर नेत्र शिर और मुख हैं, सब ओर कान हैं, वही जगत् में सबको घेरे हुए स्थित है। वह सब इन्द्रियों के गुणों का प्रकाश है, सब इन्द्रियों से रहित है। जिसको किसी से आसक्ति नहीं है, पर जो सबका आधार है, आप निर्गुण है, पर सब गुणों को भोगता है जो भूतों के बाहर-भीतर है, जो चराचर है और अचर है, जो सूक्ष्म है जाना नहीं जाता जो दूर भी और निकट भी है, जिसके विभाग नहीं होते पर जो भिन्न-भिन्न भूतों में विभक्त समान

रहता है, समस्त भूतों का पालन, नाश और उत्पन्न करने वाली वही ज्ञेय है। वह अन्धकार से परे ज्योतिष्मान् पदार्थों को ज्योति देता है। वही ज्ञान जानने योग्य पदार्थ ज्ञान के द्वारा जानने के योग्य सबके हृदय में वास करता है। इसी प्रकार क्षेत्र, ज्ञान, और ज्ञेय इनको संक्षेप में कहा है, इन्हें जानकर मेरा भक्त मेरे पद के योग्य होता है। प्रकृति और पुरुष दोनों ही अनादि हैं। विकारों और गुणों की उत्पत्ति प्रकृति से हुई है। कार्य और कारण को प्रकृति उत्पन्न करती है और पुरुष सुख और दुःख को भोगता है। प्रकृति में पुरुष रहता है, प्रकृति के गुणों का उपभोग करता है, तदनुसार उत्तम तथा अधम योनि में जन्म लेता है। इस देह में उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता, महेश्वरी, परमात्मा और परम पुरुष कहते हैं। इस प्रकार गुणों के साथ

प्रकृति और पुरुष को जो जानता है, उसका रहन-सहन चाहे जैसा हो फिर नहीं जन्मता। कोई ध्यान से, कोई सांख्य योग से और कोई कर्म योग के द्वारा अपने में आत्मा को देखते हैं परन्तु कोई इस प्रकार न जानते हुए भी दूसरों से सुनकर ध्यान करते हैं और श्रद्धा से सुनकर वे भी मृत्यु के पार चले जाते हैं। हे अर्जुन! स्थावर या जंगम सब उत्पन्न प्राणी देह और जीव के संयोग से ही प्रकटे हैं। परमेश्वर सब भूतों में समान रूप से है, भूतों के नष्ट होने पर भी उसका नाश नहीं होता इस भाँति जो देखता है, वही द्रष्टा अर्थात् आंखों वाला है। सब में समान रूप से स्थित परमेश्वर को देखता है, दुःखी किसी को नहीं, सो मेरी परम गति को प्राप्त होता है। प्रकृति माया की है जो कोई आत्मा को देखे तो अकर्त्ता देखे जब वह भिन्न-भिन्न भतों को

परमेश्वर के बीच एक रूप देखता है और उसी से उनका विस्तार देखता है तब ब्रह्म को प्राप्त होता है। हे कुन्तीनन्दन! अनादि और निर्गुण होने से परमेश्वर अव्यय है, इस शरीर में आत्मा वास करता है कुछ कर्म नहीं करता, निर्लेप सब देह में वास करता है। जैसे आकाश सर्वव्यापी होने पर भी किसी से मिलता नहीं, उसी भांति देह में सर्वव्यापी आत्मा भी इससे लिप्त नहीं होता। हे भारत! जैसे एक ही सूर्य समस्त लोक को प्रकाशित करता है वैसे ही क्षेत्रज्ञ समस्त क्षेत्र को प्रकाशित करता है। जो लोग ज्ञानदृष्टि से क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का भेद तथा भूतों की प्रकृति देखकर मोक्ष का उपाय जान लेते हैं, वे परम पद को पाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञादि नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥

तेरहवें अध्याय का माहात्म्य

श्री नारायणजी बोले-हे लक्ष्मीजी ! अब तेरहवें अध्याय का माहात्म्य सुनो। दक्षिण देश में हरिमान नगर था, वहाँ एक गणिका रहती थी। वह माँस मदिरा खाती और व्यभिचार करती थी। एक दिन एक पुरुष को उसने वचन दिया कि अमुक स्थान पर तेरे पास आऊंगी,तुम वहाँ चलो। वह पुरुष किसी और वन में चला गया और वह गणिका ढूंढती-ढूंढती हैरान हो गई, सारा दिन व्यतीत हो गया पर पुरुष का पता न लगा। साँझ हो गई वह गणिका प्रीतम का नाम लेकर पुकारने लगी। इतने में वह पुरुष आ गया, दोनों बड़े प्रेम से मिले। इतने में एक शेर आया गणिका डरी, सिंह बोला अरी गणिका मैं तुझे खाऊंगा। गणिका बोली, तू अपने पहले जन्म की बात कह तू कौन है। तब सिंह बोला, मैं पूर्व जन्म का ब्राह्मण था, झूठ बोला करता था, बड़ा लोभी था, जुआ खेलता था तथा दूसरों का धन हर लेता था। एक दिन प्रातःकाल घर से उठ चला, रास्ते

में ही देह छूट गई। यमों ने पकड़ लिया, धर्मराज के पास ले गए। देखते ही धर्मराज ने हुक्म दिया कि इसी घड़ी इस ब्राह्मण को सिंह का जन्म दो। मैं सिंह हुआ और धर्मराज ने आज्ञा दी जो प्राणी पापी दुराचार करने वाले हों तिनको खाया कर, जो साधु वैष्णव हरिभक्त हों उनके पास न जाना। तू व्यभिचारिणी गणिका पापिन है इसीसे तुझको खाऊंगा। इतना कह सिंह ने गणिका को खा लिया। दूत धर्मराज के पास गणिका को ले गये। धर्मराज ने आज्ञा दी कि इसको चांडालिनी का जन्म दो। श्रीनारायणजी कहते हैं कि हे लक्ष्मी! उसने गणिका की देह त्याग चांडालिनी की देह पाई। कुछ काल बाद वह एक दिन नर्मदा नदी के तट पर जाती थी। वहाँ एक साधु गीता के तेरहवें अध्याय का पाठ करता था, उसने पाठ सुना, जब अध्याय का पाठ सुनकर उसने प्रसाद पाया तब चांडालिनी के प्राण छूट गए। चांडालिनी ने देव देह पाई, आकाश से विमान आये तिस पर बैठकर वैकुण्ठ को चली। साधु ने पूछा, अरी तूने

कौन पुराय किया, जिसके करने से वैकुराठ को चली है। चांडालिनी ने कहा, हे सन्त जी ! इस तेरे पाठ को सुनकर मैं देव लोक चली हूँ। तब गणिका ने पार्षदों से कहा कोई ऐसा यत्न करो जिस सिंह ने मुझे पूर्व जन्म में खाया था, उसे भी ले चलो । उस साधु से प्रार्थना की कि हे सन्तजी ! गीता के तेरहवें अध्याय के पाठ का फल उस सिंह के निमित्त दीजिए तो उसका उद्धार हो । उस सन्त ने पाठ का फल दिया। सिंह की देह छूटी और उसने देव देह पाई। दोनों विमानों पर बैठकर वैकुराठ में परमधाम को प्राप्त हुए।

इति श्री पद्मपुराणे उत्तराखंडे सती ईश्वरसंवादे गीतामाहात्म्य नाम त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः ।।

अथ चौदहवाँ अध्याय

श्री भगवान् ने कहा–अब मैं तुमको ज्ञानों में श्रेष्ठ ज्ञान बताता हूं, जिसके जानने से सारे मुनिजन मोक्ष रूप परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। इस ज्ञान की सहायता से मेरे स्वरूप को

प्राप्त हुए लोग सृष्टि के समय जन्मते नहीं और प्रलयकाल में कष्ट नहीं पाते। हे भारत! परमब्रह्म मेरी योनि है मैं उसमें गर्भ को रखता हूं और उसमें भूतों की उत्पत्ति होती है। हे कौन्तेय! सब गर्भों में जो मूर्तियां उत्पन्न होती हैं, उनकी उत्पत्ति स्थान प्रकृति हैं और मैं बीज देने वाला पितर हूं। हे महाबाहो! प्रकृति से उत्पन्न सत्त्व, रज और तम तीनों गुण देह में रहने वाले निर्विकार आत्मा को बांध लेते हैं। हे अनघ! इनमें तत्त्व निर्मल होने के कारण प्रकाश और निरुपद्रव है, जो प्राणी को सुख और ज्ञान से बांधता है। हे कौन्तेय! रागात्मक रजो गुण से तृष्णा और आसक्ति पैदा होती है जो प्राणी को कर्म के साथ बांधती है। तमोगुण की उत्पत्ति अज्ञान से है, यह भ्रम आलस्य निद्रा से प्राणी को बांधता है, मोह में फंसाता है, सत्य सुख उत्पन्न करता

है, रज कर्म पैदा करता है, तम सब ज्ञानों को ढककर प्रमाद पैदा करता है, सत्त्व और तम को दबाकर बढ़ता है। इसी प्रकार रज, सत्त्व और तम को और तम सत्त्व तथा रज को दबाकर बढ़ना चाहता है। देह में इन्द्रियों द्वारा जब ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न हो तब समझो कि सत्वगुण की विशेष वृद्धि हुई है। हे भारत! रजोगुण की वृद्धि से लोभ कर्मों में प्रवृत्ति कर्मों का आरम्भ अशान्ति और इच्छा उत्पन्न होती है। हे कुरुनन्दन! तमोगुण की प्रबलता में अविवेक, अनुद्यम, प्रमाद और मोह ये सब होते हैं। जब देह को सत्वगुण के उदय में मृत्यु प्राप्त होती है, तो वह ज्ञानियों के प्रकाशमय लोक को पाता है। रजोगुण के उदय में मर कर कर्मों में आसक्त मनुष्य में जन्म पाता है। तमोगुण के उदय में मरा हुआ मूढ़ योनि में जन्म पाता है, सात्विक पुण्य कर्म का

फल भी कलंक रहित होता है। राक्षस कर्म का फल दुःख और तामस कर्म का फल अज्ञान है। सत्य से ज्ञान पैदा होता है, रज से लोभ तथा तम से प्रमाद, मोह और अज्ञान की उत्पत्ति होती है, सात्विक पुरुष को उत्तम,राजस को मध्यम और अधम तामसी लोगों को नीच गति मिलती है, द्रष्टा गुणों से अलग अर्थात् निर्गुण साक्षीमात्र आत्मा को जान लेता है वह मेरे रूप को प्राप्त होता है। जो देह में पैदा होने वाले सत्य, रज, तम इन तीनों गुणों को जान लेता है वह जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा व रोग से छूटकर मुक्ति पाता है। अर्जुन ने पूछा, हे प्रभु ! कैसे मालूम हो कि अमुक मनुष्य ने तीनों गुणों को पार किया, किन उपायों से वह इन तीनों गुणों को छोड़ता है। श्री कृष्ण बोले–हे पाण्डव ! प्रकाश प्रवृत्ति और मोह न होने से जो दुःखित हो और निवृत्त

होने में उनकी इच्छा न करे, उदासीन मनुष्य के बराबर जिसे सुख-दुख समान हैं और गुणों के कर्म होते ही रहते हैं यह जान-कर जो निश्चय रहता है कभी विचलित नहीं होता, जिसको दुख-सुख और मिट्टी, पत्थर, स्वर्ण प्रिय और अप्रिय, बुराई और भलाई समान है जो धीर है जिसने सब बखेड़े छोड़ दिये हैं उसे गुणा-तीत कहते हैं, जो अनन्य भक्ति से मुझे पूजता है वह इन तीनों गुणों को भली भांति जीतकर ब्रह्मभाव को पाता है; क्योंकि ब्रह्म का और विकार रहित मोक्ष और सनातन धर्म का और अखण्ड सुख का भण्डार मैं ही हूं और गुण ग्राही सुख का समुद्र परमानन्द भगवान् सबका प्यारा है।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्ण–अर्जुन संवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ चौदहवें अध्याय का माहात्म्य

श्री नारायणजी बोले-हे लक्ष्मी ! उत्तर दिशा में काश्मीर के सरस्वती क्षेत्र में एक विद्वान् रहता था। वहां के राजा सूर्यवर्मा की संगल द्वीप के साथ मित्रता थी। एक समय राजा ने संगल द्वीप जवाहिरात मोती, घोड़े बहुत कीमती भेजे। तब काश्मीर के राजा ने अपने मंत्री से पूछा हम क्या भेजें। मन्त्री ने कहा जो वस्तु वहां न होवे वह भेजो। राजा ने कहा और तो सब वस्तुएं वहां हैं, एक शिकारी कुत्ते वहां नहीं हैं वह भेजो। शिकारी कुत्ते सोने की जंजीर में बंधे हुए मखमली गदेलों की डोलियों में बैठाकर संगल द्वीप पहुँचाए गए। कुत्तों को देखकर राजा प्रसन्न हुआ और कहा कि ये शिकारी कुत्ते यहां नहीं थे, यह मेरे मित्र ने बहुत अच्छा किया, हम शिकार खेला करेंगे। एक दिन राजा शिकार खेलने गया। एक और राजा के साथ शर्त बांधी। सब राजाओं ने अपने कुत्ते छोड़े, एक शशक निकला उसके पीछे कुत्ते दौड़े सब कुत्ते पीछे रह गये। संगलद्वीप के राजा

के कुत्त ने शशक को पकड़ा, लोगों ने शोर किया, कुत्ता पीछे रह गया, शशक फिर भागा। कुत्ते के दांत उसके लगे थे रुधिर टपकता जाता था। भागते-भागते वन में एक कच्चा तालाब पानी से भरा मिला, उसके तट पर कुटिया में एक तपस्वी रहता था, उस तालाब में शशक जा गिरा। कुत्ता भी उसके पीछे जा गिरा। राजा भी घोड़ा दौड़ाकर उनके पीछे ही पहुँचा, देखा तो दोनों मरे पड़े हैं और देव देही पाए वैकुण्ठ को जा रहे हैं। राजा को देखकर दोनों ने कहा–राजा तू धन्य है तेरी कृपा से हमने देव देही पाई है। राजा ने पूछा यह कैसे। उन दोनों ने कहा हम नहीं जानते, इस जल के छूने से हमें देव-देही मिली है। राजा ने तपस्वी को नमस्कार करके पूछा—हे सन्तजी! शशक और श्वान इन दोनोंका जल के स्पर्श करनेसे उद्धार हो गया यह वार्ता कैसे है। उस सन्त ने कहा, हे राजन्! मेरा गुरु यहां रहता था, नित्य स्नान करके गीता के चौदहवें अध्याय का पाठ किया करता था। मैं भी यहां स्नान करके गीता का पाठ करता हूँ। राजा ने कहा–धन्य

हो संतजी ! आपके प्रभाव से ही ऐसी योनियों का उद्धार हुआ है मेरा भी धन्य भाग है जो आपका दर्शन हुआ। सन्त ने कहा हे राजा ! यह शशक पिछले जन्म का ब्राह्मण था यह अपने जन्म में भ्रष्ट हुआ था, यह कुतिया इसकी स्त्री थी, स्त्री ने इसको विष देकर मारा था जब यमलोक को गये तब धर्मराज ने आज्ञा दी कि इसको सस्सा का जन्म दो और इसको कुत्ते का जन्म दो। तब इन दोनों ने प्रार्थना की हमारा उद्धार कब होगा, तब धर्मराज ने कहा, जब गीता के चौदहवें अध्याय के पाठ करने वाले सन्तों के स्थान का जल स्पर्श होगा तब तुम्हारा उद्धार होगा। इतना सुन राजा ने भी घर आकर गीता का पाठ सुना और अन्त समय वैकुण्ठ को गया। इन दोनों का धर्मराज के घर उद्धार हुआ है।

इति श्री पद्मपुराणे सती-ईश्वरसंवादे उत्तराखंडे गीता माहात्म्य
नाम चतुर्दशोऽध्यायः समाप्त ॥

—❀—

अथ पन्द्रहवां अध्याय

श्री भगवान् बोले-हे अर्जुन ! यह संसार वृक्ष रूप है जिसकी पुराण पुरुष रूप जड़ ऊपर है और चराचर शाखा नीचे है, वेद इसके पत्ते हैं, जो यह जानता है वही वेद का ज्ञाता है। इसकी शाखाएं ऊपर-नीचे फैली हुई हैं। सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण इस वृक्ष के डाल हैं। कर्मरूप में प्रकट होने वाली इसकी जड़ें नीचे मनुष्य लोक में और भी नीचे तक चली गई हैं। इस संसार वृक्ष को वैराग्यरूपी दृढ़ शस्त्र से काट कर वह स्थान ढूंढना चाहिये जहां से फिर लौटना नहीं पड़ता और साथ ही विचारना चाहिए कि जिससे वह पुरातन प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है, उसी आदि पुरुष की शरण में हूं। अहंकार और मोह रहित संगदोष को जीतने वाले आत्मज्ञान में निरत सब कामनाओं से

दूर सुख-दुःख नामक द्वन्द पदार्थों से मुक्त ऐसे ज्ञानी पुरुष शाश्वत पद को पाते हैं। जिसे सूर्य, चन्द्रमा या अग्नि प्रकाशित नहीं करते वहां मेरा परमधाम है वहां जाकर लौटना नहीं होता। मेरा सनातन अंश इस जीव लोक में जीव का रूप धरकर प्रकृति में स्थित पांचों इन्द्रियां और छठे मन को उससे छुड़ाता है जैसे वायु पुष्पादिकों की गंध को दूसरे स्थान में ले जाती है इसी प्रकार वह देह स्वामी शरीर धारण करने के बाद जब उसको परित्याग करता है तब इन्द्रियों और मन को साथ ले जाता है। कान, आंख, चर्म, जीभ, नाक और मन का आश्रय लेकर वह जीव विषयों को भोग करता है। एक देह में जाते अथवा एक ही देह में रहते समय अथवा इन्द्रियों से युक्त हो विषयों का उपभोग करते हुए इसको मूर्ख देख नहीं सकते किन्तु जिसके ज्ञान रूप

नेत्र हैं, वे देखते हैं। यत्न करने से योगीजन देखते हैं परन्तु अज्ञानी यत्न करके भी इसे नहीं देख पाते। जो तेज सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि में वर्तमान है और जो जगत् को प्रकाशित करता है, उसे मेरा ही तेज जानो, मैं ही पृथ्वी में प्रवेश कर अपने तेज से समस्त भूतों को धारण करता हूं और इनमें भरा हूं। मैं जठराग्नि होकर प्राणियों के देह में प्रविष्ट हूं और प्राण, वायु, अपान वायु से जीम कर चारों प्रकार के भोजन किये हुए प्राणियों के अन्न को पचाता हूं। में सम्पूर्ण भूतों के हृदय कमल में निवास करता हूं। मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और उसका नाश होता है, सब वेदों में जानने योग्य मैं ही हूं वेदांत का कर्ता और वेदोंका ज्ञाता मैं ही हूं। इस संसार में दो पुरुष हैं, एक विनष्ट हो जाता है दूसरा अविनाशी रहता है किन्तु उत्तम पुरुष

परमात्मा विकार रहित सर्वनियन्ता बुद्ध, मुक्त नित्यरूप तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर धारण-पोषण करता है। इन दोनों से अलग है। मैं क्षर-अक्षर से उत्कृष्ट हूं इसी कारण से लोक व वेद में पुरुषोत्तम नाम से विख्यात हूं। हे भारत! जो उत्तम ज्ञानीजन इस प्रकार मुझको पुरुषोत्तम जानता है वह सब कुछ जान जाता है और सब फलों में मेरा ही भजन करता है। हे भारत! शास्त्र के इस गुह्य भेद को मैंने कहा है, इसे जानकर बुद्धिमान् पुरुष कृतकृत्य हो जाता है।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे संसारवृक्षयोगो नाम पंचदशोऽध्याय: ॥१५॥

=——

अथ पन्द्रहवें अध्याय का माहात्म्य

श्री नारायणजी बोले–हे लक्ष्मीजी! अब पन्द्रहवें अध्याय का माहात्म्य सुनो। उत्तर देश में एक नृसिंह नामक राजा था और

सुभग नामक उसका मन्त्री था। राजा को मंत्री पर बड़ा भरोसा था, मन्त्री के मन में कपट था, मन्त्री चाहता था राजा को मारकर यह राज्य मैं ही करूं। इस भांति कुछ काल व्यतीत हुआ, एक दिन मन्त्री ने राजा को मार डाला और स्वयं राज्य करने लगा। समय पाकर मन्त्री भी मर गया, यमराज के दूत उसे बांधकर ले गये। धर्मराज ने कहा हे यमदूतो! यह पापी है इसे घोर नरक में डाल दो। कई नरक भोगने के बाद उसने धर्मराज की आज्ञा से घोड़े की योनि में संगलद्वीप में जन्म लिया। बड़े घोड़ों का सौदागर उसे मोल लेकर अपने देश को चला गया। चलते-चलते अपने देश में आया तब वहां के राजा ने सुना कि अमुक सौदागर बहुत घोड़े लाया है तब राजा ने उसे बुलाया, देखकर घोड़े खरीदे, उस घोड़े को भी खरीदा जब उस घोड़े को फेरा तब उस राजा को देखकर उस घोड़े ने सिर फेर लिया। राजा ने कहा क्या कारण है जो सिर फेरा। पंडितों ने कहा हे राजन्! इस घोड़े ने तुमको सिर नवाया है, राजा ने कहा

यह बात नहीं है। कई दिन पीछे राजा शिकार खेलने को उसी घोड़े पर सवारी करके गया। वह घोड़ा जल्दी चलता था, राजा शिकार खेलता-खेलता बहुत दूर चला गया। उस दिन राजा ने हाथों हाथ शिकार पकड़ कर मारे, राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। दोपहर हो गया राजा को प्यास लगी, राजा ने उसी वन में एक साधु को कुटिया मैं बैठा देखा। पास ही एक तालाब जल से भरा देखा। राजा घोड़े को वृक्ष से बांधकर कुटिया में गया तो देखा कि साधु अपने पुत्र को गीता के पन्द्रहवें अध्याय का पाठ सिखा रहा था। वृक्ष के पत्ते पर श्लोक लिख दिया और बालक से कह दिया कि खेलते फिरो और इसको कंठ भी करो। जिस वृक्ष से राजा ने घोड़ा बांधा था वह पत्ता लेकर उसी वृक्ष के नीचे श्लोक याद कर रहा था और खेल भी रहा था। उस पत्ते को घोड़े ने देखा तो तत्काल उसकी देह छूट गई। इतने में राजा पानी पीकर आया तो देखा घोड़ा मरा पड़ा है। राजा ने चिन्तावान हो कर कहा कि यह घोड़ा किसने मारा इतने में अदृ-

श्य रूप से आवाज आई हे राजन् ! मैं इस घोड़े का चैतन्य हूं देव देही में वैकुण्ठ को जाता हूं । राजा ने पूछा तुमने कौनसा पुण्य किया है ? घोड़े ने कहा राजन् ! यह बात ऋषिवर से पूछो । राजा ने मुनीश्वर से पूछा तो उन्होंने कहा हे राजन् ! गीता का श्लोक लिखा पत्ता इसके आगे पड़ा है, घोड़े ने अक्षर देखे हैं इस कारण घोड़े की गति हुई । राजा ने पूछा पिछले जन्म में घोड़ा कौन था और घोड़े के सिर फेरने की बात भी राजा ने कही । मुनीश्वर ने कहा राजन् ! पिछले जन्म में तू राजा था और यह मन्त्री था, इसने तुझे मारकर तेरा राज्य ले लिया था । यह मर कर धर्मराज के पास गया, धर्मराज ने धिक्कार कर कहा–इसी पाप को घोर नरक में डाल दो । यह नरक भोगता-भोगता घोड़े के जन्म में आया । संगल द्वीप से आकर तेरे पास बिका । जब इसने सिर हिलाया तब कहा—हे राजन् ! तू मुझे पहचानता नहीं, मगर मैं तुझे पहचानता हूँ । यह कह ऋषि चुप हो गये । राजा ने विस्मित होकर दण्डवत् की । राजा भी श्री गीताजी के

पन्द्रहवें अध्याय का पाठ नित्य किया करता था, जिसके प्रसाद से राजा भी परम गति का अधिकारी हुआ।

इति श्री पद्मपुराणे सती-ईश्वरसंवादे उत्तराखंडे गीतामाहात्म्य नाम पंचदशोऽध्यायः समाप्तम्: ॥

—❀❀—

अथ सोलहवां अध्याय

श्रीकृष्णजी बोले—हे भारत ! अभय, शुद्ध, सतोगुण होना, ज्ञान, योगनिष्ठा, दान, इन्द्रिय दमन, यज्ञ, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, चुगली न करना, सब प्राणियों पर दया, तृष्णा से बचना, कोमल स्वभाव, लज्जा, चपलता का त्याग, तेज, क्षमा, धृति, पवित्रता, द्वेषराहित्य, अभिमान न करना, दैवी सम्पत्ति के लिए जन्म धरने वालों को ये सब गुण मिलते हैं। हे पार्थ ! दंभ, अभिमान, क्रोध, कटुभाषण

और अज्ञान ये सब आसुरी सम्पत्ति के लिए जन्म लेने वालों को प्राप्त होते हैं। हे पाण्डव! दैवी सम्पत्ति, मोक्ष और आसुरी सम्पत्ति बन्धन का कारण होती है। तुम शोक न करो, क्योंकि तुम दैवी सम्पत्ति के भोग को जन्मे हो। हे पार्थ! इस लोक में देव और असुर ये दो प्रकार के प्राणी उत्पन्न किये गए हैं। दैवी सम्पत्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुके, अब आसुरी को सुनो। धर्म में प्रवृत्ति और अधर्म से निवृत्ति यह असुर लोग नहीं जानते, उनमें न शौच न आचार न सत्य ही है। वे संसार को असत्य, निराधार और अनीश्वर कहते हैं। उनके मतमें जगत् की उत्पत्ति का कारण काम से प्रेरित स्त्री-पुरुषों के संयोग के अतिरिक्त कुछ नहीं है। मलिन आत्मा, अल्प बुद्धि, दारुण कर्म करने वाले इस संसार को नष्ट करने के हेतु पैदा होते हैं और दुष्कर्म

से आश्रित होकर वे दम्भ, मानी और मद से युक्त पुरुष नीच कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। वे मृत्यु पर्यन्त चिन्ता से ग्रसित रहते हैं, अनेक आशा रूप पाशों में बद्ध काम, क्रोध में तत्पर, कामोपभोग के लिए अन्याय से अर्थ संचय की इच्छा करते हैं। मैंने आज यह पाया इस मनोरथ को पाऊंगा यह मेरा है और यह धन भी फिर मेरा हो जायगा, यह शत्रु तो मैंने मारा दूसरे को भी मारूंगा मैं ईश्वर भोगी, सिद्ध, बलवान् और सुखी हूं। मैं धनी कुलीन हूं, मेरे समान दूसरा कौन है। मैं यज्ञ करूंगा, दान करूंगा, आनन्द करूंगा इस प्रकार अज्ञान से मोहित हुए हैं। अनेक कल्पनाओं से मोह रूपी बंधन में फंसे हुए विषय-भोगों में आसक्त लोग रौरव नरक में गिरते हैं। अपनी बड़ाई आप करते हैं, धनधाम के मद में चूर रहते हैं,

शास्त्रों की विधि छोड़कर केवल नाम के लिए यह करते हैं। वे अहंकार बल, घमंड, काम और क्रोध से युक्त हैं, अपनी तथा औरों की देह में स्थित मुझमें द्वेष रखते तथा मेरी निन्दा करते हैं। द्वेष करने वाले क्रूर और अधम पापियों को मैं संसार की आसुरी योनियों में ही डालता हूं। हे कौन्तेय! जन्म-जन्म में आसुरी योनि पाकर वे मूर्ख मुझको पाये बिना ही अन्त में अधम गति को प्राप्त होते हैं। काम, क्रोध, लोभ ये तीन द्वार नरक के हैं,इस कारण इन तीनों को त्यागना चाहिये। हे कौन्तेय! इन तीन नरक के द्वारों से छूटा हुआ मनुष्य अपने कल्याण को सुकर्म करता है तब उत्तम गति को पाता है। जो शास्त्रोक्त विधानों को छोड़ स्वेच्छानुसार कर्म करता है, वह सिद्धि को नहीं पाता, सुख को नहीं पाता,परगति को नहीं पाता अतएव

कार्य और अकार्य इनको जानने के लिए शास्त्र प्रमाण है, जो शास्त्र विधि से जो कुछ ज्ञान, यज्ञ, तप, दान करते हैं सो प्राणी मेरी कृपा से मेरी परमगति को पावेगा।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे कृष्णार्जुनसंवादे देवसम्पदा विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सोलहवें अध्याय का माहात्म्य

श्रीनारायणजी बोले-हे लक्ष्मीजी! सोरठ देश के राजा का नाम खड्गबाहु था। वह बड़ा धर्मात्मा था, उसके हाथियों में एक मस्त हाथी था। उसकी धूम मच रही थी, वह महावतों को पास न आने देता था। जो महावत उस पर चढ़ता था उसे वह मार देता था। राजा ने उसको पकड़ने वाले आदमी को इनाम देने के लिए आज्ञा दी थी। हे लक्ष्मी! उस हाथी को किसी ने नहीं पकड़ा एक दिन हाथी नगर में उपद्रव कर रह था सामने से एक साधु चला आया, लोगों ने उस साधु से कहा

हे सन्तजी ! यह हाथी आपको मार डालेगा। साधु ने नेत्र पसाकर देखा तो हाथी ने सूंड से साधु की चरण वन्दना की तथा खड़ा रहा। तब साधु ने कहा हे गजेन्द्र ! मैं तुझे जानता हूं तू पिछले जन्म में पापी था, मैं तेरा उद्धार करूंगा, चिन्ता मत कर। हाथी बराबर चरण छूता माथा नवाता था, लोगों ने देखकर राजा को खबर दी, राजा ने आकर देखा तो हाथी साधु के सामने खड़ा है। उस सन्त ने गीता का पाठ करके कमण्डल में जल लेकर मुख से कहा मैंने गीता के सोलहवें अध्याय के पाठ का फल इस हाथी को दिया। इतना कह जल छिड़कने से हाथी की देह छूटी और उसने देव देही पाई और विमान पर चढ़कर वैकुण्ठ को गया। राजा ने सन्त को दण्डवत् प्रणाम की तथा कहा—सन्तजी आपने कौन मन्त्र कहा जिससे इस नीच दुःखदायक को सद्गति प्राप्त हुई। सन्त ने कहा मैंने गीता के सोलहवें अध्याय के पाठ का फल इसे दिया है नित्य ही मैं पाठ करता हूँ। राजा ने पूछा पिछले जन्म में

हाथी कौन था। साधु ने कहा—हे राजन् ! यह पिछले जन्म में एक अतीत बालक था। गुरु विद्या पढ़ाई, पंडित हुआ। वह अतीत तीर्थयात्रा को गया। पीछे उसकी प्रभुता बहुत बढ़ गई, अच्छे-अच्छे सत्संगी उसके दर्शन को आने लगे, बारह वर्ष पीछे गुरुजी आये। अतीव बड़े समाज में बैठा था, मन में सोचा अब इनके आदर को उठता हूं तो मेरी प्रभुता घटेगी, यह सोचकर नेत्र मूंद कर चुप हो रहा। गुरुजी ने देखा मुझे देखकर उसने नेत्र बंद किये हैं ऐसा देखकर श्राप दिया कि हे मन्दमति ! तू अन्धा है, मुझे देखकर सिर भी नहीं नवाया और न उठकर दण्डवत् की है, तूने अपनी प्रभुता का अभिमान किया है सो हाथी की योनि पावेगा। यह सुनकर वह बोला हे सन्तजी ! आपका वचन सत्य होगा, गुरु को दया आई और कहा जो गीता के सोलहवें अध्याय के पाठ का फल संकल्प कर तुझे देगा तब तेरा उद्धार होगा। यह सुनकर राजा ने भी पाठ सीखा और

सोलहवें अध्याय का पाठ नित्य करने लगा। समय पा राजा भी सद्गति को प्राप्त हुआ।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तराखंडे सतीईश्वरसंवादे गीतामाहात्म्य नाम षोडशोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ सत्तरहवां अध्याय

अर्जुन ने पूछा-हे कृष्णजी! शास्त्रविधि को छोड़ श्रद्धा के साथ जो पुरुष आपका पूजन करते हैं उनकी निष्ठा सात्विकी है या राजसी है अथवा तामसी है? श्री भगवान् बोले प्राणियों की स्वभाव से ही सात्विकी राजसी, और तामसी ये तीन प्रकार की श्रद्धा हैं, सो सुनो। हे अर्जुन! सबको अपनी प्रकृतिके अनुसार श्रद्धा होती है जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वह वैसा ही होता है। सात्विकी पुरुष देवताओं को पूजते हैं रजोगुणी यक्ष-राक्षसों को पूजते हैं और तामसीजन भूत-प्रेतों को पूजते हैं। लोभ, कपट, अहंकार, कामना,

विषयानुराग और आग्रह युक्त शास्त्र में कहा हुआ उग्र तप करते हैं वे मूर्खता से न केवल अपने शरीरस्थ आत्मा को बल्कि मुझे भी कष्ट देते हैं, उन्हें निश्चय ही आसुरी जानो। प्रत्येक को तीन प्रकार का आहार प्रिय है। उसी तरह यज्ञ तप, और दान भी तीन प्रकार के हैं, जिनके भेद सुनो। आयु, सत्य, बल, आरोग्य, सुख और प्रीत को बढ़ाने वाले रस-घृत के साथ पोषक और आनन्ददायक आहार सात्विकों को प्रिय हैं। कड़वे, खट्टे, मीठे, नमकीन, गरम, तीखे, रूखे, चटपटे तथा दुःख शोक और रोगजनक भोजन राजसी लोगों को प्रिय हैं पहरों का रखा हुआ, नीरस दुर्गन्धयुक्त बासी उच्छिष्ट अपवित्र भोजन तामस लोगों को अच्छा लगता है। यज्ञ करना ही है ऐसा मनको दृढ़ करके फल की इच्छा बिना विधि पूर्वक जो यह किया जाता है, वह सात्विक है। हे

अर्जुन ! फल की कामना से और लोक के दिखाने के लिए जो यह किया जाता है, उसे राजसी जानो। शास्त्र विधि से हीन, आनन्द से रहित मंत्रहीन और बिना श्रद्धा के लिए किया हुआ यज्ञ तामस कहाता है। देवता, ब्राह्मण, गुरु और विद्वान् इनका पूजन, पवित्रता, सरलता ब्रह्मचर्य और अहिंसा का आचरण करना शारीरिक तप है, जिस वाक्य से किसी का दिल न दुखे सत्य प्रिय, हितकारी वचन बोलना, स्वाध्याय का अभ्यास वास्तविक तप है, मन की प्रसन्नता, चित्त की शांति, मौन, आत्मनिग्रह और निष्कपट रहना यह मानसिक तप है। यह तीनों प्रकार का तप यदि श्रद्धा से फल की इच्छा त्याग कर और योगयुक्त होकर किया जाय तो सात्त्विक तप कहलाता है, जो अपना आदर करावे और अपनी मानता करावे तो पाखंडी तपस्या राजसी तपस्या है।

जो दुराग्रह से आत्मा को कष्ट देकर व दूसरे के नाश के लिए किया जाय वह तामसी तपस्या है। फल की इच्छा त्याग उत्तम बुद्धि उत्तम स्थान में सत्पात्र को बदले में कोई वस्तु लेने की इच्छा बिना दिया जाता है उसे सात्त्विक दान कहते हैं। जो दान प्रत्युपकार अथवा किसी फल की इच्छा से क्लेश पूर्वक दिया जाता है उसे राजसी दान कहते हैं। अयोग्य पुरुषों को निरा-दर के साथ जो दान दिया जाता है तामसदान है ओम् तत् और सत ब्रह्म के नाम हैं, इन्हीं से आदिकाल में ब्राह्मण, यज्ञ और वेद बने हैं। इसी से ज्ञानी पुरुष यज्ञ दान, तप आदि शास्त्रोक्त क्रियाएं ओंकार उच्चारण के साथ करते हैं मुमुक्षुजन फल की इच्छा न करके तत् शब्द का उच्चारण कर यज्ञ तप और दान करते हैं। हे अर्जुन ! सत शब्दों का उच्चारण सद्भाव और

साधु भाव में किया जाता है तथा मांगलादिक विवाहादिक कर्म में भी सत् शब्द का उच्चारण करते हैं यज्ञ, तप और दान में जो सत् कहते हैं और ईश्वर की प्राप्ति के अर्थ जो कर्म हैं वे भी सत् कहलाते हैं। हे पार्थ! बिना श्रद्धा दान और तप जो कर्म किये जाते हैं वे असत् कहते हैं वे न इस लोक में और न परलोक में हितकारी हैं और मैं भी उनको नहीं ग्रहण करता।

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषदत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे श्रद्धा यविभागो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथ सत्तरहवें अध्याय का माहात्म्य

श्रीभगवान् बोले—मण्डलीक नाम देश में दुःशासन नाम का राजा था एक और देश के राजा ने आपस में शर्त बांधी कि हाथी लड़ाये जावें और जिसका हाथी जीते वह अमुक धन लेवे। दूसरे राजा का हाथी जीता दुःशासन का हाथी हारा। कुछ दिन बाद हाथी

मर गया तो राजा दुःशासन को बड़ी चिन्ता हुई। एक तो द्रव्य गया दूसरे हाथी मरा तीसरे लोगों में हँसी हुई। इसी चिन्ता में राजा मर गया, यमदूत उसे पकड़कर धर्मराज के पास ले गये। धर्मराज ने आज्ञा दी कि यह हाथी के मोह से मर गया इसे हाथी की योनि दो। हे लक्ष्मी ! राजा दुःशासन संगलद्वीप में जाकर हाथी हुआ, उस राजा के बहुत हाथी थे तिन में आया, पिछले जन्म की उसे खबर थी। कुछ दिनों में राजा के पास एक ब्राह्मण आया उसने राजा को एक श्लोक सुनाया। राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और कहा कि हे ब्राह्मण ! तुम्हारी जो इच्छा हो वह मांगो, ब्राह्मण ने कहा मेरे पास सब कुछ है केवल हाथी नहीं है राजा ने सुनकर वही हाथी दिया। ब्राह्मण अपने घर उस हाथी को ले गया ब्राह्मण ने रात को हाथी को दाना दिया पर हाथी ने न दाना खाया न जल पिया। हाथी रुदन कर मन में चिन्ता कर रहा था कि मुझे कोई इस योनि से छुड़ावे। तब ब्राह्मण ने महावतको बुलाकर पूछा कि इस हाथी को क्या दुःख है जो खाता-

पीता कुछ नहीं है। महावत ने देखकर कहा—इसको कुछ नहीं है। तब ब्राह्मण ने राजा से कहा राजा उसको देखने को आया, राजा ने अच्छे-अच्छे वैद्य और महावत बुलाकर सबको हाथी दिखलाया। उन्होंने देखकर कहा—हे राजा! इसको मानसिक दुःख है, देह का दुःख नहीं तब राजा ने कहा कि तू ही बोल तुझे क्या दुःख है। परमेश्वर की शक्ति से मनुष्यों की भाषा में हाथी ने कहा कि राजन्! तू बड़ा धर्मज्ञ है यह ब्राह्मण भी धर्मज्ञ है। इसके घर का अन्न वह खावे जो बड़ा धर्मज्ञ हो मुझ जैसा अधम क्योंकर खा सकता है? तब ब्राह्मण ने कहा—हे राजा! आप अपना हाथी फेर लो। राजा ने कहा दान की वस्तु मैं फिर लौटाकर नहीं ले सकता। हाथी ने कहा—हे ब्राह्मण! चिन्ता मत कर तू मुझे गीता के सत्तरहवें अध्याय का पाठ सुना। ब्राह्मण ने ऐसा ही किया। हे लक्ष्मी! पाठ सुनते ही तत्काल हाथी की देह छूटी और देव देह पाई। आकाश से विमान आये, विमान पर चढ़कर राजा की स्तुति की और कहा कि राजन्! तू धन्य है तेरी

कृपा से मैं इस अधम देही से छूटा हूं फिर राजा को अपने पिछले जन्म की कथा भी सुनाई।

इति श्री पद्मपुराणे उत्तराखंडे सती-ईश्वरसंवादे गीतामाहात्म्य नाम सप्तदशोऽध्यायः समाप्तम्: ॥

अथ अठारहवां अध्याय

॥ मोक्ष संन्यास योग ॥

अर्जुनोवाच–अर्जुन श्रीकृष्णदेवजी से प्रश्न करते हैं कि हे महाबाहो हृषिकेष भगवान्जी ! हे केशी दैत्य के मारने वाले हे प्रभु ! मैं तुमसे संन्यास और त्याग का तत्त्व जानना चाहता हूं कि संन्यास किसको कहते हैं और त्याग किसको कहते हैं। सो प्रभु इन दोनों का उत्तर भिन्न-भिन्न कहो। अर्जुन की विनय मानकर श्रीकृष्ण भगवान बोलते भये। श्री भगवान् बोले—हे अर्जुन ! संसार की कामना के सभी कार्य कर्म त्याग

कर मेरी शरण में आना संन्यास और मेरे चरण कमल में आकर मेरी भक्ति बिना और किसी वस्तु की कामना न करना त्याग संन्यास है। यह तो हमने अपने मत का संन्यास और त्याग कहा है। अब अर्जुन! जैसे शास्त्रों का मत है सुन। एक शास्त्र तो यह कहते हैं कि बुरे और भले दोनों कर्म त्यागिये, क्योंकि भले कर्म का फल सुख और बुरे कर्म का फल दुःख भोगना है। भले कर्म चरणों में सोने की बेड़ी हैं बुरे कर्म चरणों में लोहे की बेड़ी हैं। दूसरे भले बुरे कर्म दोनों बन्धन के दाता हैं इसलिए इनका छोड़ना योग्य है। हे अर्जुन! एक शास्त्र यह कहता है यज्ञ, दान, तपस्या, स्नान ऐसे सत्य कर्म नहीं छोड़ने चाहिये ये पवित्रता के दाता हैं ये कर्म करने से देह पवित्र होती है। हे भारतवंशी अर्जुन! अब निश्चय कर मेरे

मत का त्याग सुन ! यह तीन प्रकार के हैं। प्रथम तो मेरा मत यह है यज्ञ, दान, तपस्या, स्नान यह मनुष्य को पवित्र करते हैं विवेकी पुरुष इनका त्याग नहीं करते जो भले विवेकी पुरुष हैं यह सत्य कर्म करने तिनको भले हैं। भले कर्म करके उनका फल वांछते नहीं इसी कारण मेरे मत में वह बात भली है। सब बातों में श्रेष्ठ है कि सत्य कर्म की वांछा न करे यह अति भली है जो अज्ञान से आलस्य करे, सत्य कर्म छोड़ कर कहे कि सत्य कर्म करने से क्या होता है। जो प्राणी माया का मोहा हुआ सत्य कर्म छोड़े सो तामसी त्याग कहलाता है जो प्राणी देह के दुःख के डर से सत्य कर्म छोड़े कि स्नान करने से मुझे शीत लगता है हाथ दुखते हैं इस प्रकार का त्याग तामसी कहाता है इसका फल नहीं पाते। हे अर्जुन ! जो इस प्रकार सत्य कर्मों

को करे प्रथम तो कहे मेरा क्षत्रिय ब्राह्मण का जन्म दुर्लभ है, स्नान आदि कर्म करने मुझको भले हैं। अवश्यमेव कर्म करे और फल की वांछा नहीं करे। ऐसा सात्त्विक त्याग कहाता है। हे अर्जुन! विवेकी पुरुष स्नान आदि सत्य कर्मों की निन्दा नहीं करते और न आप सत्य कर्मों का त्याग करते हैं निश्चय से इन्हें करते हैं फल की वांछा नहीं करते। हे अर्जुन! ऐसे प्राणियों की बुद्धि निर्मल होती है तिस निर्मल बुद्धि से ज्ञान उपजता है जब मेरी महिमा का ज्ञान उपजा तब संसार के बन्धन से मुक्त होता है इससे हे अर्जुन! सत्य कर्मों का त्याग न करे जैसे सीढ़ियों के मार्ग से मन्दिर के ऊपर जा चढ़ता है यह सत्य कर्म करने मुक्ति की सीढ़ी है और जितने देहधारी हैं सो किसी देहधारी की शक्ति नहीं जो सत्यकर्म त्यागे। हे अर्जुन!

जब पिता के वीर्य से माता के उदर में यह जीव आता है उसी दिन से लेकर मरने के दिन तक कभी यह निष्कर्मी नहीं होता और न यह जीव त्यागी होता हैं। हे अर्जुन! यह कब निष्कर्मी होता है सो सुन-प्राणी सत्यकर्म मुझको समर्पै कुछ फल न मांगे तब यह जीव निष्कर्मी और त्यागी होता है। अब जो मनुष्य को सदा ही अपने कर्म करने का तीन प्रकार का फल होता है सो सुन, भले कर्म का फल सुख और बुरे कर्म का फल दुःख और जो बुरे-भले रलामिलाकर करे तो सुख-दुःख मिश्रित होता है, ये तीन प्रकार के फल हैं जो सदा संसारी मनुष्य को होते हैं पर तिनको जो संसार को छोड़ मेरी शरण नहीं आए तिनको दुख जो प्राण त्यागकर मेरे चरण कमल की शरण आये उनके निकट कोई दुःख नहीं आता अब अर्जुन और सुन! जिनके

कर्म देहधारी मनुष्यों से होते हैं भले वा बुरे सो सब देह-इन्द्रियों के मन से होते हैं। आत्मा कैसा है? अकर्ता है कुछ नहीं करता केवल एक ही है निर्मल-का-निर्मल। हे अर्जुन! तिसको उन्होंने पहचाना है जिनकी निर्मल बुद्धि है जो जिस आत्मा को पहचानते हैं और दुर्गति और अन्धमति पुरुष आत्मा को नहीं देख सकते। हे अर्जुन! तिसकी अहंबुद्धि नहीं कि मैं जो आत्मा हूं अकर्ता हूं कुछ नहीं करता। जो कुछ भला-बुरा कर्म होता है देह-इन्द्रियों के मन से होता है जिसकी ऐसी बुद्धि है सो वह सब लोगों को मारे तो उसको कोई देख भी नहीं सकता किसी कर्म का उनको बन्धन नहीं। अब अर्जुन तीन प्रकार का ज्ञान, तीन प्रकार का कर्म और कर्ता भिन्न-भिन्न सुन, पहले सत्व ज्ञान सुन—जिस ज्ञान से सब प्राणियों में उसको एक ही

अविनाशी आत्मा दृष्टि आता है, जिसको सर्वव्यापी जानकर सबके साथ एकसा व्यवहार हो, वैर से दुःख किसी को न देवे, सुखदाई बने, यह सात्विक ज्ञान कहाता है और जब ज्ञान भिन्न दृष्टि हुआ कि यह और है और मैं और यह तेरा है यह मेरा है सो राजसी ज्ञान कहाता है और जिस ज्ञान से सब कोई बुरा दृष्टि आवे और सबसे बैर बांधे रहे सो ऐसा तामसी ज्ञान कहाता है। अब अर्जुन कर्म सुन, जो इस प्रकार कर्म करे जो यह कर्म करना मुझको योग्य हैं फल की कुछ वांछा नहीं, यह सात्विक कर्म कहाता है। जिस कर्म के करने से फल की वांछा है और अहं-कार के साथ कहे यह कर्म मैं करता हूं और जिस कर्म किये से जंजाल बहुत होवे सो ऐसा कर्म राजसी कहावे है। जिस कर्म में कोई बन्धन बांधना, किसी को दुखाना, किसी का घात करना और

ऐसा कर्म करने से अपना बल और बड़ाई दिखाना। इस प्रकार माया का मोह्या हुआ कर्म का आरम्भ करे सो तामसी कहावे है और कर्म कर्ता सुन, इस प्रकार कर्म करे यज्ञ, महोत्सव, होम श्रद्धा, चाह इत्यादि जो हैं, सत्य कर्म तिनको करे, फल कुछ न वांछे, अहंकार से रहित हो। मेरा कुछ नहीं सब परमेश्वर का है और उद्यम से रहित जो कुछ सरल सहज हो सोई करे और बिगड़े तो कल्पे नहीं जो कुछ कार्य सम्पूर्ण हो तो प्रसन्न न हो बैठे। वह क्या समझे मेरा सब कुछ ईश्वर का है। हर्ष शोक से रहित हो जो कुछ ईश्वर इच्छा आ मिले सो भोजन करे इस प्रकार सात्विक कर्त्ता कहावे। राजसी कर्त्ता सुन, जीवों के दुखाने में जिसका स्वभाव और अपवित्रता हर्ष शोक कर संयुक्त जो यज्ञ कर उसके फल की कामना मन में करे कि लोग मुझको धन्य

कहेंगे। इस निमित्त हर्ष होना यह घर से जो द्रव्य होता है इस कारण से शोक होना यह राजसी कर्ता कहलाता है अब तामसी कर्त्ता सुन, शास्त्र की विधि को न समझे यह महोत्सव किस विधि से किया जाय किसी को मस्तक न नवाये, महामूढ़, आलसी व विषादी सब किसी से लड़ाई करे वह तामसी कर्ता है। अब हे अर्जुन! तीन प्रकार की बुद्धि तीन प्रकार की दृढ़ता भिन्न-भिन्न सुन, जिस बुद्धि से गृहस्थ में भी सुखी रहे, भले कार्य को भला जाने बुरे कार्य को बुरा जाने और यह भी समझे कि इस बात से मुझको मुक्ति तथा इससे बन्धन होगा। जिस बुद्धि से यह बात समझे सो सात्विक बुद्धि है और जिस बुद्धि से धर्म को अधर्म, जो बुरे को भला जाने और-की-और समझे ये राजसी लक्षण हैं। जिस बुद्धि से धर्म को अधर्म जाने, जीवघात करने से

पुण्य जाने, अर्थात् यह बकरा मैं मारता हूं पुण्य होगा इत्यादिक और बातें समझे तो ऐसे धर्म को अधर्म उलटे समझे तो तामसी बुद्धि कहावे है। अब दृढ़ता सुन, मन में किसी विकार को न चितवे और इद्रियां सब वश में होवें, केवल एक प्रभु की शरण रहे जब यह वार्ता हो तब सात्विक दृढ़ता जान और जब मन अपने धर्म में सब प्रकार दृढ़ द्रव्य के कमाने में दृढ़ खाने-पहिनने से दृढ़ता हो तब तू राजसी दृढ़ता जान और जब महाघोर निद्रा में सो रहे और परम चिंता में मग्न और किसी से कलह विषाद ये तीनों लक्षण तामसी दृढ़ता के हैं ऐसे दुर्बुद्धि वाले निद्रा कलह चिन्ता तीनों विकारों से अपने आपकी मुक्ति नहीं कर सकते, तिनको तामसी दृढ़ता जान। हे भरतवंशी अर्जुन ! अब तीन प्रकार का सुख सुन-जो सुख कड़वा खावे नहीं, मिष्ट सुखदायक अमृत तुल्य

भोजन करे प्रथम तप कष्ट साधकर तब राज्य स्वर्ग फल पावे, यह सात्विक सुख कहावे है। अब राजसी सुख सुन, जिसका फल दुःख हो। प्रथम सुख को पाकर पीछे विष फल खाय यह राजसी कहावे है। अब तामसी सुन, प्रथम बेसुरत निद्रा में आलस्य, असावधानता, प्रभु को बिसारना सबसे निपट शंका रहना तामसी सुख है। अब अर्जुन और सुन, स्वर्ग से लेकर पृथ्वी तले पाताल-लोक, नागलोक तथा तीनों लोक माया से उपजे हैं। इन तीनों लोकों में माया के तीन गुण बरते हैं। इन तीनों ही गुण के स्वभाव लोक में बरते हैं। लोकों में गुण हैं गुणों विषे लोक हैं। इसी कारण त्रिगुणमयी सृष्टि कही है। हे अर्जुन! जब ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों के स्वभाव की प्रक्रिया देह के साथ ही जन्मती है। प्रथम ब्राह्मण के स्वभाव की प्रक्रिया कहते

हैं। इन्द्रियों का जीतना, मन जीतना, तप करना, भजन करना, पवित्र, क्षमा, कोमल स्वभाव, ज्ञान अपना और विज्ञान परमेश्वर का जानना और गोविन्द में तत्त्व बुद्धि परमेश्वर का जानना, यह ब्राह्मण के स्वाभाविक धर्म हैं। अब क्षत्री के स्वाभाविक धर्म सुन-शूर, तेजस्वी, युद्ध से न भागने वाला, राजा बुद्धिमान्, दानी होना, परमेश्वर में श्रद्धा होना ये क्षत्री के स्वाभाविक लक्षण कहे हैं। अब वैश्य के स्वाभाविक धर्म सुन-खेती करना, वाणिज्य व्यापार, गौवों की सेवा करना ये वैश्य के स्वाभाविक धर्म हैं। अब शूद्र के सुन, तीनों ही वर्णों की सेवा करना, जो प्राप्ति हो उसी में सन्तोष रखना ये शूद्र के स्वाभाविक धर्म हैं। ये चारों वर्णों के स्वभाव कहे। प्राणी इन अपने-अपने कर्मों के करने में दृढ़ होने से जो फल उपजे सो क्या है। पारब्रह्म सारी

सृष्टि का जो कर्त्ता सर्व में रमा हुआ अविनाशी तिसको प्राप्त होगा। हे अर्जुन! ये चारों वर्णों के जो धर्म कहे हैं, इनमें सबको अपने-अपने धर्म पालन से कल्याण होता है। अपना धर्म तुच्छ देखे, दूसरे का धर्म बड़ा देखे तब भी अपने धर्म से ही इसका कल्याण देना है, पराया धर्म इसकी सहायता न करेगा। अपने-अपने धर्म करने से पाप नहीं, अपना धर्म मुक्ति का दाता है। चार वर्णों के धर्म कहे हैं। अब तीनों पद-लक्षण सुनके--हे अर्जुन! मेरा भजन करने से चारों अवगुण कट जाते हैं सहज पद को प्राप्त होता है इनको चौथा पद कहते हैं। इसको सहज पद, तुरीयपद और सत्पद भी कहते हैं। जो प्राणी इस पद को प्राप्त होता है उसको किसी कर्म त्यागने का दुःख नहीं और जो सत्पद को पाकर किसी कर्म का आरम्भ करे उसको बड़ा

दोष है। सत्पद का दृष्टांत सुन, जैसे धुएं से रहित निर्मल अग्नि जलती है तिस निर्मल अग्नि में धुएं वाली लकड़ी डाल दें, तब वह निर्मल अग्नि को बिगाड़ देती है। ऐसे ही चौथे पद वाले को कर्म आरम्भ करना दोष है कर्म का आरम्भ करना सत्य पद को बिगाड़ देता है। इस कारण जो तुरीयपद में लीन हुआ तिसको कर्म का आरम्भ करना कुछ नहीं रहा। अब जो प्राणी चौथे पद में लीन हुआ है, तिसके लक्षण सुन-मुख्य लक्षण ये हैं, किसी से मोह-ममता नहीं, संसार के विषयों से अपना मन जीत रखा है, किसी वस्तु की इच्छा नहीं कोई कामना नहीं, वह निष्कर्मी सिद्ध हैं। तिस सुख के सामने और कोई सुख नहीं इस कारण तिसको कोई वांछा नहीं सो वह किस सिद्धि को प्राप्त हुआ है। हे कुन्तीनन्दन अर्जुन! वह मेरे जानने के ज्ञान

को पूर्णतया प्राप्त हुआ है। तिसकी बुद्धि निर्मल हुई और महेश्वर पारब्रह्म विषे तिसको दृढ़ निश्चय हुआ है और संसारी लोगों की बात नहीं सुनता और न आप किसी से बात करता है, न किसी के साथ प्रीति है न शत्रुता है, एकान्तवासी मेरे स्मरण के सुख को पाकर पूर्ण हो रहा है। संसार जिसने तीन बातें जीत रखी हैं, अर्थात् देह से संसारी मनुष्यों से संग नहीं करता, जिह्वा से बात नहीं करता, मन से संसारी लोगों का चिन्तवन नहीं इस प्रकार देह वाणी मनसा ,जीव यह जीत रखा है और नित्य निरंतर मेरे ध्यान में जुड़ा हुआ है। सारे संसार से वैराग्यवान् है। वह ऊपर ब्रह्म के लोक तले शेषनाग के लोक के परमसुख को तृण समान जानता है इसका नाम वैराग्य है। फिर कैसा अहंकार। बल,गर्व,काम,क्रोध, इनका त्यागी इनमें रमता

नहीं और भोजन छादन से कुछ अधिक रखता नहीं इसका नाम त्याग है। जो छहों विकार त्यागे और किसी वस्तु के साथ ममता-मोह न रखे ऐसे जो सत्य पुरुष हैं, सो देह साथ होते ही मुक्त हैं फिर वह कैसा हुआ, ब्रह्मभूत क्या कहिये माया के तीन गुण सो काटे गए। जब तीन गुण काटे तब जैसा आत्म ब्रह्म था तैसा ब्रह्मभूत ब्रह्म ही हुआ। इस कारण से तिसको ब्रह्मभूत ही कहिये ब्रह्मभूत हुआ तब तिसका आत्मा प्रसन्न हुआ तब कुछ गई वस्तु की चिन्ता न करे, अनहोई वस्तु के आने की वांछा न करे, सब भूत प्राणियों से समता दृष्टि हो यह लक्षण तुरीयपद के हैं, जब तुरीयपद में मनुष्य आवे है तब मेरी भक्ति को तुरन्त ही पावे है। मेरी भक्ति यह है कि जो मेरी महिमा का प्रताप जानता है सो मेरा भक्त कैसा है तुरीयपद में लीन हुआ क्या ब्रह्मज्ञान का

प्रकाश हुआ सो भक्त प्रभु को जाने सकल प्रताप प्रभु का माने बड़ाई महत्ता का ब्रह्मबोध विचार इसको जाने आगे और माहात्म्य नहीं तिस महिमा का जानना ही परम भक्ति है। सो क्षण-क्षण पल-पल राम नाम को सुमरे। हे अर्जुन! जिसने मेरी महिमा का ज्ञान रूप अमृत का पान किया, सो जब तक मनुष्य देह में बसे तब तक परम शांति सुख में मग्न रहता है। जब देह त्यागे तब मेरे परम निधि अविनाशी पद में जा लीन होता है। यह चौथे पद तुरीय शांतिपद के लक्षण कहे, जिनको भजन रूप अमृत का स्वाद आया है और साथ ही माया की प्रकृति का त्याग कर रहे हैं, सो मेरी कृपा से मेरे पद को प्राप्त होता है उसी कारण से हे अर्जुन! तू मन का निश्चल चेता मेरे में रख, मेरे साथ ही प्रीति कर, बुद्धि को निश्चल चेता मेरे में रखने से संसार के दुःख से तर जायगा

और जो अपने अहंकार से मेरी आज्ञा न मानेगा, तब तेरा विनाश हो जायेगा। जो तू अहंकार से कहे कि मैं युद्ध नहीं करता सो तेरा कहना झूठ है। क्यों जैसी तेरी प्रकृति है, वैसा ही तुझसे हो रहा है। हे कुन्तीनन्दन अर्जुन! जैसे-जैसे स्वभाव के देहधारी उपजे हैं, सो सब स्वभाव के वश हैं। स्वभाव किसी के वश में नहीं। जो तू कुटुम्ब का मोहित यह कहे कि मैं युद्ध नहीं करता तो क्षत्री का स्वभाव तुझसे अवश्य युद्ध करावेगा। हे अर्जुन! एक ईश्वर का स्वरूप भूत प्राणियों में बसे है सो अवश्य कर। जीवों को मोह यन्त्र पर ही बैठकर सबको भ्रमाता है, इस कारण सत भावों से तू ईश्वर की शरण जा परम शांति जो कल्याण पुरातन स्थान है, उसको प्राप्त होवेगा। हे अर्जुन! यह परमगुह्य ज्ञान मैंने तेरे प्रति कहा है और जितने मार्ग मेरे पाने

के हैं सो तेरे प्रति सब कहे हैं, क्योंकि तू मेरा परम मित्र है तेरी बुद्धि मेरे चरणों के साथ दृढ़ है। इस कारण तेरे कल्याण निमित्त मैं कहता हूं। हे अर्जुन! सब भजनों में मुझको यह भजन रुचिकर है। जब तू इस भजन से दृढ़ होगा, तब सब भक्तों से मुझे प्यारा लगेगा सब भजनों को त्याग कर मेरी शरण आ मैं तुझको सब पापों से मुक्त करूँगा तू चिन्ता मत कर। हे अर्जुन! वह ज्ञान जो मैंने तुझको कहा है, सो तुझे ऐसे लोगों को नहीं सुनाना है जो मेरी भक्ति से विमुख हैं जिसकी सुनने की श्रद्धा न हो और जो मेरा गुह्य ज्ञान मेरे भक्तों को सुनावेगा वह मुझे भक्ति सहित जिस पुरुष ने मेरी भक्ति की है मुझे पायेगा ऐसा कोई दूसरा पुरुष मेरे प्रसन्न करने को नहीं है, ऐसा प्राणी न पीछे कोई हुआ न आगे होगा वह मुझको अति प्यारा है जो मेरे भक्त को गीता

का ज्ञान श्रवण कराता है। उसको बहुत फल प्राप्त होगा और जो कोई इस गीता के एक श्लोक का भी पाठ करेगा तिसका फल सुन--सब यज्ञों में श्रेष्ठ ज्ञान यज्ञ है तिसका फल देता हूं और तिस पाठकर्ता के निकट जा खड़ा होता हूं। जैसे कोई किसी का नाम लेकर बुलाये, तब वह तत्काल बोलता है, तैसे ही गीता के पाठ करने वाले के निकट मैं जा खड़ा होता हूं और जो अर्थ कर सुनाये, तिसकी महिमा बड़ाई कुछ कही नहीं जाती, जैसे मेरी महिमा और बड़ाई वचनों से अगोचर है और तैसे गीता के अर्थ करने वालों की महिमा वचनों से अगोचर है और सुनने वाला इनको सत्य मानकर श्रवण करे वह भी जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त होकर परमानन्द के अविनाशी पद को पावेगा। इससे हे अर्जुन! यह ज्ञान तूने एकाग्रचित्त होकर श्रवण

किया है, सो तेरे अज्ञान मोह का नाश हुआ। श्रीकृष्णजी के वचन सुनकर अर्जुन बोला हे अच्युत अविनाशी पुरुष ! हे भगवन् ! तुम्हारी कृपा से मेरे मोह का नाश हुआ और ज्ञान भी पाया मेरी बुद्धि भी निर्मल हुई मेरे मन के जो सन्देह थे तिनका नाश हुआ और आपके मुख कमल से युद्ध करने की आज्ञा हुई है सो युद्ध करता हूं। संजय उवाच-संजय राजा धृतराष्ट्र से कहता है, हे राजन् ! श्रीकृष्ण भगवान्जी और अर्जुन इन दोनों का संवाद गोष्ठ गीता का माहात्म्य सुन-समझकर मेरे रोम खड़े हो गये हैं। जो व्यासजी ने मुझे दिव्य दृष्टि दी है सो तिनकी कृपा से ज्ञान गोष्ठ मैंने कहा है सो यह अत्यंत गुह्य है। योगीश्वरों के ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् और अर्जुन के मुख कमल से जो ज्ञान निकला है तिसको विचार कर परम हर्ष को प्राप्त हुआ हूं और विश्वरूप

जो श्री भगवान्‌जी ने अर्जुन को दिखाया है, तिसको विचारकर परम हर्ष और विस्मय को प्राप्त हुआ हूं। हे राजन्! अब मेरे निश्चय की बात सुन, जिस ओर योगीश्वरों के ईश्वर श्रीकृष्णजी और गांडीव धनुषधारी अर्जुन हैं उसी ओर लक्ष्मी है उसी की जय होगी मेरी मति यही है तू यह निश्चय कर जान, जिनके पक्ष पर श्रीकृष्णजी हैं ऐसे परम भाग्यवान् पाण्डवों की जय होगी पाण्डव जीतेंगे और तेरे अधर्मी पुत्र हारेंगे, यह निश्चय जान ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां श्रीकृष्णार्जुन संवादे संन्यास योगोनाम ऽष्टदशोऽध्यायः ॥१८॥

अथ अठारहवें अध्याय का माहात्म्य

श्रीनारायणोवाच—हे लक्ष्मी! अठारहवें अध्याय का माहात्म्य सुन, जैसे सब नदियों में गंगाजी श्रेष्ठ हैं, देवताओं में हरि, सब तीर्थों में पुष्करराज, सब पर्वतों में कैलास पर्वत, सब ऋषियों में नारद हैं, सब गऊओं में कपिला कामधेनु गऊ तैसे सब अध्यायों में

गीता का अठारहवां अध्याय श्रेष्ठ है तिसका फल सुन, सुमेरु पर्वत पर देवलोक में इन्द्र अपनी सभा लगाये बैठा था, उर्वशी नृत्य किया करती थी। इन्द्र बड़ी प्रसन्नता में बैठे थे। इतने में एक चतुर्भुज रूपधारी को पार्षद लाये। इन्द्र को सब देवताओं के सामने कहा तू उठ इसको बैठने दे, यह सुन इन्द्र ने प्रणाम किया उसने तेजस्वी को बैठा दिया। इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पति से पूछा, गुरुजी! तुम त्रिकालदर्शी हो देखो इसने कौन-सा पुण्य किया है जिससे यह इन्द्रासन का अधिकारी हुआ, मेरे जानने में इसने कोई पुण्य व्रत दान नहीं किया, विशेष ठाकुर मन्दिर नहीं बनवाया तालाब और कूप नहीं लगाया किसी को अभय दान नहीं दिया। बृहस्पति ब्रह्मादिक सब देवताओं ने कहा चलो नारायणजी से पूछें। तब राजा इन्द्र बृहस्पति ब्रह्मादिक सब देवता श्रीनारायणजी के पास गये। जाकर दंडवत् कर प्रार्थनापूर्वक कहा हे स्वामिन्! दास सहायक, भक्तरक्षक आपके चार पार्षदों ने एक चतुर्भुज तेजस्वी स्वरूप को लेकर मुझको इन्द्रासन से

उठा उसको बैठा दिया है। मैं नहीं जानता उसने कौन पुण्य किया, मैंने कई अश्वमेध यज्ञ किये हैं तब इन्द्रासन का अधिकार आपने दिया है। इसने एक यज्ञ भी नहीं किया यह मुझे बड़ा आश्चर्य है, तब श्रीनारायणजी ने कहा हे राजेन्द्र ! तू मत डर, अपना राज्य कर इसने बड़ा गुह्य उत्तम पुण्य किया है इसका नियम था कि नित्य प्रति स्नान कर श्री गीताजी के अठारहवें अध्याय का पाठ किया करता था। इसके मन में भोगों की तृष्णा रही थी जब इसने देह छोड़ी मैंने आज्ञा करी पार्षदो ! तुम इसको पहले लेजाकर इन्द्रलोक का भोग कराओ। जब इसका मनोरथ पूरा हो तो मेरी सायुज्य मुक्ति को पहुंचावो, तुम जाकर भोगों की सामग्री इकट्ठी कर दो और कहो इन्द्रलोक के सुख को भोगो। कुछ काल इन्द्रपुरी के सुख को भोग फिर श्री भगवान् की कृपा से सायुज्य मुक्ति देकर वैकुण्ठ का अधिकारी हुआ। श्रीनारायण जी कहते हैं, हे लक्ष्मी ! शिवजी कहते हैं हे पार्वती ! यह अठारहवें अध्याय का माहात्म्य है।

श्री भगवानुवाच-श्रीनारायगाजी कहते हैं जो ब्राह्मण, साधु, वैष्णव योगी अठारहवें अध्याय का पाठ करते हैं तिनको मैं कई अश्व-मेध यज्ञ किये का फल देता हूं, कई कपिला गोदान किये का असंख्य चान्द्रायण व्रत किए का और भी बड़े दान-पुण्य का फल देता हूं, जो प्राणी नित्यप्रति श्रीगीताजी का पाठ करते हैं या प्रीति के साथ सुनते हैं और पवित्र स्थान में बैठकर पढ़ते-सुनते हैं, हरिद्वार की पौड़ियों पर, गंगाजी के किनारे पर, तुलसी व पीपल के पास बैठकर, हरि मन्दिर और जहां उत्तम ठौर है तहां बैठकर पढे तो उस प्राणी को कलियुग के जितने पाप हैं नहीं लगते और दुःख क्लेश व आपदा से छूट जाता है। जो प्राणी यह चार साधन करे-गंगास्नान, गीता गायत्री का पाठ, संतों की सेवा व गोविंद भजन इसके प्रताप से कलियुग के पाप नहीं व्यापेंगे। इन पर्वों में गीता का पाठ करके एकादशी, अमावस्या, पूर्णमासी को हजार गोदान किये का फल होवे पितृ-पक्ष में पाठ करे तो जितने पितर अधोगत गये हैं उन

सबका गीता पाठ करे तो क्या कहना है। एक अध्याय का श्लोक नित्य पढ़े तो मुक्ति भुगति सब मिलेगी। जो श्रोता को सुनावे तो गोदान किये का फल होगा इस जीवन का उद्धार होगा वह वैकुण्ठवासी होकर आशीर्वाद करेंगे तिनकी मुक्ति होगी। उद्धार के सात यत्न हैं गंगा स्नान, गीता पाठ, कपिला गऊ की सेवा, गायत्री पाठ, तुलसी पीपल में जल सींचना, ज्ञानी संतों की सेवा करना, एकादशी व्रत रखना। हे लक्ष्मी ! सर्व शास्त्रमयी गीता, सर्वधर्ममयी दया, सर्वतीर्थमयीगंगा, सर्व देवमयो हरि। अर्जुन कथा सुनकर कृतार्थ हुआ। चारों वर्णों में जो कोई इसको पढ़े-सुने धारणा करेगा सो कृतार्थ होवेगा। इसकी अपार महिमा है, कहने-सुनने से बाहर है मुक्ति-भुक्ति की दाता है॥ १८॥

॥ इति समाप्त ॥

—:०:—

आरती श्री गीताजी की

जय गीता माता श्री जय गीता माता । सुख करनी दुख हरनी तुमको जग गाता ।
अज्ञान मोह ममता को क्षण में नाश करे, सत्य ज्ञान का मन में तू प्रकाश करे ।। जय गीता०।।
शरण तेरी जो आवे तेरी मति ग्रहण करे, पाप ताप मिट जावे निर्भय भव सिंधु तरे ।। जय गीता०।।
रण क्षेत्र में अर्जुन जब शोकधारी हुआ, कर्त्तव्य कर्म तज बैठा बहुत मलीन हुआ ।।जय गीता०।।
तब श्री कृष्ण के मुख से तुमने अवतार लिया, तत्त्व ज्ञान समझा कर उसका उद्धार किया ।।जय गीता०।।
शरीर जन्मते मरते आत्मा अविनाशी, शरीर का दुःख व्यापे आत्मा सुखराशी ।।जय गीता०।।
अतः शरीर की ममता मन से त्याग करो, आत्म ब्रह्म को चीन्हो उससे अनुराग करो ।।जय गीता०।।
सबमें ब्रह्म को जानो सबसे प्रीति करो, वैर भाव ममतावश होकर न अनरीति करो ।।जय गीता०।।
निष्काम कर्म नित्य करके जग का उपकार करो, फल वांछा को त्याग सद्व्यवहार करो ।।जय गीता०।।
मन को वश में करके इच्छा त्याग करो, निष्काम जगत् में रहकर हरि से अनुराग करो ।।जय गीता०।।
यह उपदेश जो तेरे मन में लावे, भगवान भवसागर से वह क्यों न तर जावे ।।जय जय०।।

प्रातः पठनीय नागलीला चरित

श्रीकूल यमुना धेनु आगे, जल में बैठे प्रभुजी आन के ।
नाग नागिन दोनों बैठे, श्री कृष्णजी पहुँचे आन के ।।
नागिन कहती सुनो रे बालक, जाओ यहां से भाग के ।
तेरी सूरत देख मन दया उपजी, नाग मारेगा जाग के ।।

किसका बालक पुत्र कहिये, कौन तुम्हारो गाम है।
किसके घर तू जनम्या रे बालक, क्या तुमरो नाम है॥
वसुदेवजी का पुत्र कहिए, गोकुल हमरा गाम है।
श्री माता देवकी जन्म्यो नूं, श्रीकृष्ण हमारा नाम है॥
लै रे बालक, हत्थां कंगन कन्ना दे कुंडल, सब सवा लाख की बोरियां।
इतना द्रव्य लै जा रे बालक, दिया नागां गोलां चोरियां॥
क्या करां तेरे हाथों के कंगन, कानों के कुण्डल, सवा लाख की बोरियां।
श्रीमात यशोदा दही बिलोवे, पाय तेरे नाग काले दियां डोरियां॥
क्या बालक वेद ब्राह्मण, क्या मरिया तूतां पाहुना ए।
नाग दल में आन पहुंचिया, अब कैसे घर जावना ए॥
ना रे पद्मिनी ब्राह्मण, नन्दजी का मैं बालक।
श्री मात यशोदा दही बिलोवे, नेतरा मांगे काले नाग का॥
कर चूमे भुजा मरोड़ी, नागन नाग जगाया।
उठो रे बलवन्त जोधा, बालक नथने को आया॥
उठो रे उठो मण्डली के राजा, इन्द्र वांगूं मर जाया।
बांके मुकट पर झपट कीनी, श्री कृष्णजी मुकट बचाया॥
भुज का बल स्वामी खेंच लियो, जीभ का बल प्रभु जी रहन दियो।
हाथ काली नाग नाथियो, फन-फन निरत करायो॥

फूल-फूल मथुरा की नगरी, देवकी मंगल गाया।
भगत हेतु प्रभु जन्म लेकर, लंका में रावण मारिया ॥
काली देह नाग नथिया, मथुरा में कंस पछारिया।
सप्त द्वीप नौ खण्ड, चौदह सभी तेरा है पसारिया ॥
सूरदास प्रभुजी तेरा यश गावे, तेरे चरणा तों बलिहारिया ॥

आरती निर्गुण ब्रह्म की

ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे, भक्तजनों के संकट चण में दूर करे।
जो ध्यावै फल पावै दुःख बिनसै मन का, सुख सम्पत्ति घर आवै कष्ट मिटे तनका।
मात पिता तुम मेरे शरण गहूँ किसकी, तुम बिन और न दूजा आस करूं जिसकी।
तुम पूरण परमात्मा तुम अन्तर्यामी, पारब्रह्म परमेश्वर तुम सबके स्वामी।
तुम करुणा के सागर तुम पालन कर्ता, मैं मूरख खल कामी कृपा करो भर्ता।
तुम हो एक अगोचर सबके प्राणपती, किस विधि मिलूं गोसाईं तुमको मैं कुमती।
दीन बन्धु दुःख हर्ता तुम ठाकुर मेरे, अपने हाथ उठाओ द्वार पड़ा तेरे।
विषय विकार मिटाओ पाप हरो देवा, श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ सन्तन की सेवा।
ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे, भक्त जनों के संकट चण में दूर करे।

श्री गंगाजी की पहली आरती

ॐ जय जय गंगे श्री जय जय गंगे। त्रिलोकी केतारण कारण कष्ट निवारण भक्त उद्धारन आई गंगे। जो तेरी शरणागत आवे, आश्चर्य महिमा वेद सुनावें नरमुनि ज्ञानी ध्यान लगावें तेरा गंगे।

जीवन के मुक्ति का इच्छित फल पावे, श्री गंगे। पाप हरण मुक्ति की दाता काटे दर्शन यम की त्रासा, हर गंगे। लाल आरती जो नित गावें, बसि बैकुण्ठ परमपद पावै, हर गंगे ॥

श्री गंगाजी की दूसरी आरती

जो जन गंगा कहै। जन्म-जन्म के कोटि पाप सब क्षणही मांह दहै। करत स्नान सो वांछित फल तत्क्षण तुरत लहै॥
अरु कुल पदम निवासनी जयजय सेवक वहि गहै। जग जीवनी जगदम्बाजी को हरिहर ध्यान धरें॥
देवन अरज करन नित ध्यावत मूढ़ की त्रास चहै। ब्रजपति को प्यारी संगम ते बहु सुख देन चहै॥

श्री गंगाजी की तीसरी आरती

ओं जय गंगे माता, श्रीजय गंगे माता, जो नर तुमको ध्याता, मन वांछित फल पाता ॥ ॐ जय गंगेमाता॥१
चंद्र सी ज्योति तुम्हारी जल निर्मल आता, शरण पड़े तेरी, सो नर तर जाता ॥ ॐ जय गंगे माता ॥२
पुत्र सगर के तारे सब जग को ज्ञाता, कृपा दृष्टि तुम्हारी त्रिभुवन सुखदाता ॥ ॐ जय गंगे माता ॥३
एक ही वार जो तेरी शरणागति आता, यम की त्रास मिटाकर, परम गति पाता ॥ ॐ जय गंगे माता ॥४
आरती मात तुम्हारी जो जन मन गाता, दास वही सहज में मुक्ति को पाता ॥ ॐ जयगंगे माता ॥५

॥ इति श्री गंगाजी की आरती सम्पूर्णम् ॥

आरती श्री शिवजी की

शीश गंग अर्धांग पार्बती, सदा विराजत कैलासी।
नंदीभृङ्गी नृत्य करत हैं गुण भक्तन शिवकी दासी॥

शीतल मंद पवन सुगन्ध बहै बैठे हैं शिव अविनाशी।
करत गान गन्धर्व सप्तस्वर राग रागिनी अति गासी ॥
यक्ष रक्ष भैरव जहं डोलत बोलत हैं बन के वासी।
कोयल शब्द सुनावत सुन्दर भंवर करत हैं गुंजासी ॥
कल्पद्रुम अरु पारिजात जहं जाग रहे हैं लक्षासी।
कामधेनु कोटिक जहां डोलत करत दुग्ध की वर्षा सी ॥
सूर्यकान्त सम पर्वत शोभित चन्द्रकांत नवमी मासी।
छहों तो ऋतु नित फलत रहत हैं पुष्प चढ़त है वर्षासी ॥
देव मुनि जन की भीड़ पड़त है निगम रहत जो नित गासी।
ब्रह्मा विष्णु जाको ध्यान धरत हैं कछु शिव हमको फर्मासी ॥
ऋद्धि सिद्धि के दाता शंकर सदा अनन्दित सुखरासी।
जिनका सुमरन सेवा करते छूट जाय यम की फांसी ॥
त्रिशूलधर जी को ध्यान निरन्तर मन लगाय कर जो गासी।
दूर करे विपदा शिव तन की जनम-जनम शिव-पद पासी ॥
कैलासी काशी के वासी अविनाशी मेरी सुधि लीज्यो।
सेवक जान सदा चरणन को अपना जान दरस दीज्यो ॥
तुम तो प्रभुजी सदा सयाने अवगुण मेरे सब ढकियो।
मम अपराध क्षमा कर शिवजी किंकर की विनती सुनियो ॥

आरती श्री दुर्गाजी की

जय अम्बे गौरी मैया जय मंगल मूर्ति मैया जय आनन्द करणी ।
तुमको निशदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिवरी ।।टेक
मांग सिंदूर विराजत टीको मृगमद को । उज्ज्वल से दोउ नयना चंद बदन नीको ।।
कनक समान कलेवर रक्तांबर राजे । रक्त पुष्प की गल माला कण्ठन पर साजे ।।
केहरि वाहन राजत खड्ग खप्पर धारी । सुर नर मुनिजन सेवत तिनके दुःख हारी ।।
कानन कुण्डल शोभत नासाग्रे मोती । कोटिक चन्द्र दिवाकर सम राजत ज्योती ।।
शुम्भ निशुम्भ विदारे महिषासुर घाती । धूम्र विशाल विलोचन निशदिन मदमाती ।।
चौंसठ योगिनि गावत नृत्य करत भैरू । बाजत ताल मृदंगा और बाजत डमरू ।।
भुजा चार अति शोभित खड्ग-खप्पर धारी । मन वांछित फल पावत सेवत नर नारी ।।
कंचन राज विराजत कोटि रत्न ज्योति । श्री मालकेत में राजत कोटि रत्न ज्योति ।।
दोहा—जगदम्बे की आरती जो नर गावै । कहत शिवानन्द स्वामी सुख सम्पत्ति पावै ।।

आरती श्री सत्यनारायण जी की

जय लक्ष्मी रमणा श्री जय लक्ष्मी रमणा । सत्यनारायण स्वामी जन पातक हरणा ।।
रत्न जटित सिंहासन अद्भुत छवि राजे । नारद करत गान निरन्तर घण्टा ध्वनि बाजे ।।
प्रकट भये कलि कारण द्विज को दरश दियो । बूढ़ा ब्राह्मण बनके कंचन महल कियो ।।

दुर्बल भील कराल जिन पर कृपा करी । चन्द्रचूड़ एक राजा जिसकी विपति हरी ॥
वैश्य मनोरथ पायो श्रद्धा तजि दीनी । सो फल भोग्यो प्रभुजी फिर स्तुति कीनी ॥
भाव भक्ति के कारण छिन-छिन रूप धरयो । श्रद्धा धारण कीनी उसको कारज सरयो ॥
ग्वाल बाल संग राजा वन में भक्ति करी । मन वांछित फल दीनों दीन दयाल हरी ॥
चढ़त प्रसाद सवाया कदली फल मेवा । धूप दीप तुलसी से राजी सत्य देवा ॥
श्री सत्यनारायणजी की आरती जो कोई गावै । भक्त दास सुख सम्पति मन वांछित फल पावै ॥

आरती श्री बजरंगवली की

आरती कीजै हनुमान लला की । दुष्ट दलन रघुनाथ कला की ॥ जाके बल से गिरवर कांपै ।
रोग दोष जाके निकट नहीं झांपै ॥ अंजनि पुत्र महा बलदाई । सन्तन के प्रभु सदा सहाई ॥
दे बीड़ा रघुनाथ पठाये । लंका जार सीय सुधि लाये ॥ लंका सो कोट समुद्र-सी खाई ।
जात पवन सुवत वार न लाई ॥ लंका जारि असुर संहारे । सिया रामजी के काज संवारे ॥
लछमण मूर्च्छित पड़े सकारे । आनि सजीवन प्रान उबारे ॥ पैठि पताल तोरि जम कारे ।
अहिरावण की भुजा उखारे ॥ बांये भुजा असुर दल मारे । दहिने भुजा सन्तजन तारे ॥
सुरनर मुनिजन आरती उतारें । जय जय जय हनुमान उचारें ॥ कंचन थाल कपूर लौ छाई ।
आरति करत अंजना माई ॥ जो हनुमान की आरति गावै । बसिवैकुण्ठ अमर पद पावै ॥
लङ्का विध्वंस कीन्ह रघुराई । तुलसीदास प्रभु कीरति गाई ॥

द्रोपदी विनय

बिन काज आज महाराज लाज गई मेरी। दुःख हरो द्वारकानाथ शरण मैं तेरी ॥टेक॥ दुःशासन वंश कठोर महा दुःखदाई। कर पकड़त मेरा चीर लाज नहीं आई ॥ अब भया धर्म का नाश पाप रह्यो छाई। लखि अधम सभा की ओर नार बिलखाई ॥ शकुनी, दुर्योधन, कर्ण खड़े सब घेरी। दुःख हरो द्वारकानाथ शरण मैं तेरी ॥१॥ तुम संतन को सुख देत देवकीनन्दन। है महिमा अगम अपार भक्त उर नन्दन ॥ किया सिया दुःख दूर शम्भु धनु खण्डन। ऐ तारण मदन गोपाल मुनिन मन रंजन ॥ करुणा निधान भगवान् करी क्यों देरी। दुःख हरो द्वारकानाप शरण मैं तेरी ॥२॥ बैठे यहां राज समाज नीति सब खोई। नहिं कहत धर्म की बात सभा में कोई ॥ पांचों पति बैठे मौन कौन गति होई। लै नन्द नन्दन को नाम द्रौपदी रोई ॥ कर-कर विलाप संताप सभा में टेरी। दुःख हरो द्वारकानाथ शरण मैं तेरी ॥

गजेन्द्र मोक्ष

नाथ कैसे गज के फन्द छुड़ायो, यह अचरज मोहिं आयो ॥टेक॥ गज और ग्राह लड़े जल भीतर लड़त-लड़त गज हारयो, जौ भर सूंड़ रही जल ऊपर तब हरि नाम पुकारयो ॥नाथ॥ शबरी के बेर, सुदामा के तन्दुल रुचि-रुचि भोग लगायो, दुर्योधन के मेवा त्यागे साग विदुर घर खायो ॥नाथ॥ बैठ पाताल काली नाग नाथ्यो फण पर नृत्य करायो, गिर गोवर्धन कर पर धारयो नन्द घरलाल कहायो ॥नाथ॥ अघासुर मारयो बकासुर मारयो दावानल पान करायो, खम्भ फाड़ हिरणाकुश मारयो नरसिंह नाम धरायो ॥नाथ॥ अजामिल गज गणिका तारी द्रोपदि का चीर बढ़ायो। पय पान करत पूतना मारी कुबजा का रूप बनायो ॥नाथ॥ कौरव पाण्डव का युद्ध रचायो कौरव मार हटायो।

दुर्योधन का मान घटायो मोहि भरोसा आयो ॥नाथ॥ सब सखियां मिलि बंधन बांध्यो रेशम गांठ बंधायो । छूटे नहीं राधाजी कंगन कैसे गोवर्धन उठायो ॥नाथ॥ योगी जाको ध्यान धरत हैं ध्यान नहीं आयो । सूर श्याम प्रभु तुम्हरे मिलन को यशुदा को धेनु रचायो ॥नाथ॥

श्रीरामचन्द्र स्तोत्र

श्री रामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भव भय दारुणम् ।नव कंच लोचन कंज मुख कर कंजपद कंजारुणम् । कंदर्प अगणित अमित छवि नव नील नीरद सुन्दरम् । पट पीत मानहु तड़ित रुचि सुचि नौमि जनक सुतावरम् । भजु दीन बन्धु दिनेश दानव दुष्ट वंश निकन्दनम्, रघुनन्द आनन्द-कन्द कौशल चन्द दशरथ नंदनम् । सिर क्रीटकुण्डल तिलक चारु उदारु अंगविभूषणम् । आजानु भुज शरचाप धर संग्रामजित खरदूषणम् । इति वदति तुलसीदास शंकर शेषनिवास कर कामादि बलदल रंजनम् । मन जाहि राचो मिलहि सो वर सहज सुन्दर सांवरो । करुणानिधान सुजान शील सनेह जानत रावरो । यह भांति गौरी असीस सुनि सिय सहित हिय हर्षित अली । तुलसी भवानीहि पूज पुनि-पुनि मुदित मन मन्दिर चली । सियावर रामचन्द्र की जय ।

श्री कमल नेत्र स्तोत्र

कमलनेत्र कटिपीताम्बर अधर मुरली गिरधरम् । मुकुट कुण्डल कर लकुटिया सांवरे राधेवरम् ॥१॥ कूल यमुना धेनु आगे सकल गोपियों के मन हरन । पीत वस्त्र गरुड़ वाहन चरण सुख नित सागरम् ॥२॥ करत केलि कलोल निशिदिन कुंजभवन उजागरम् । अचल अमर अडोल निश्चल पुरुषोत्तम अपारपरम् ॥३॥ दीनानाथ दयालु गिरधर कंस हिरणाकुश भंजनम् । गल फूल माला

विशाल लोचन अधिक सुन्दर केशवम् ॥४॥ वंशीधर वासुदेव छल्यो बाल छल्यो हरि वामनम् । जल डूबत गज राख लीनो छेद्यो रावणम् । सप्तदीप नवखण्ड चौदह भवन कीनो एक पलम् ॥५॥ द्रौपदी की लाज राखी कहां लौं उपमा करम् । दीनानाथ दयालु पूरण करुणामय करुणाकरम् ॥६॥ कविदत्तदास विलास निशदिन नाम जप नितनागरम् । प्रथम गुरुजी के चरण वंदो यस्य ज्ञान प्रकाशितम् ॥७॥ आदि विष्णु जुगादि ब्रह्मा सेवते शिवशंकरम् । श्री कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण यदुपति केशवम् ॥८॥ श्री राम रघुवर राम रघुवर राम रघुवर राघवम् । मच्छ कच्छ वराह नरसिंह पाहि रघुपति पावनम् ॥९॥ मथुरा में केशवराय विराजे गोकुल बाल मुकन्दजी । श्री वृन्दावन में मदन मोहन गोपीनाथ गोविन्दजी ॥१०॥ धन मथुरा धन गोकुल जहां श्री हरि अवतरे । धन जमुना का नीर निर्मल ग्वाल बाल सखावरे ॥११॥ नवनीत नागर करत निछत शिव विरचित मन मोहितम् । कालिन्दी तट करत क्रीड़ा बाल अद्भुत सुन्दरम् ॥१२॥ ग्वालबाल सब सखा विराजे संग राधे भामिनी । बंशीवट तट निकट यमुना मुरली की टेक सुहावनी ॥ ३॥ भज राधे रघुवंश उत्तम परम राजकुमार जी । सीता के पति भगत जानत जगके प्राण आधार जी ॥१४॥ जनक राजा प्राण राखो धनुष बाण चढ़ावही । सती सीता नाम जाके श्री रामचन्द्र वर पावहीं ॥१५॥ धन मथुरा खेल गोकल नन्द के हरि नन्दनम् बाल लीला पतित पावन देवकी वसुदेवकम् ॥१६॥ श्री कृष्ण कलिमल हरण जाके जो भजे हरि चरण को । भक्ति अपनी देह माधव भवसागर में तरण को ॥१७॥ जगन्नाथ जगदीश स्वामी श्री बद्रीनाथ विश्वंभरम् । द्वारका के नाथ श्री पति केशवं प्रणमाम्यहं ॥१८॥ श्री कृष्ण अष्ट-पद पढ़त निशिदिन विष्णु लोक सगच्छितम, श्रीगुरु रामानन्द अवतार स्वामी कविदत्तदास समाप्तम् ॥

५००० न्यूज, ४०००|प्रिन्टिंग १०-१-६ टेक्निकल प्रिंटिंग प्रेस, सोनीपत (निकट दिल्ली) में मुद्रित ।

समस्त प्रेमी भक्तों तथा हरिजनों के लिए भगवान भक्ति सम्बन्धी विशेषकर वेदान्त की पुस्तकें

स्वामी महात्मा जीवनरामजी धर्माचार्य द्वारा (१) जीवनराम (२) जीवाराम (३) जीवादास (४) जीवानन्द आदि चार उपनामों से लिखित।

१. **अनुभव प्रकाश**—इसमें मनुष्य बोध भजनमाला, ज्ञान वैराग्य प्रकाश भजनमाला और ब्रह्मज्ञान भक्ति प्रकाश तीन पुस्तके शामिल हैं, मू० ७॥) साढ़े सात रुपया

२. **ज्ञान वैराग्य प्रकाश भजनमाला**— भवसागर से तरने के लिए नियमबद्ध पढ़ने योग्य पुस्तक जिसमें निर्गुण-सगुण भजनमाला व गद्य-पद्य प्रश्नोत्तर का संग्रह है। मू० ३) तीन रुपया।

३. **मनुष्य बोध भजनमाला**—इस पुस्तक में ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, गृहस्थ, और संन्यास चारों आश्रमों को भजन, दोहा, श्लोकों में अर्थ सहित समझाया गया है। मू० २॥) ढाई रुपया।

४. **ब्रह्मज्ञान भक्तिप्रकाश**—इसमें लेखक ने रामजन भगवान प्रेमियों को बोध कराने के लिए लिखा है। मू० ३) तीन रुपया।

५. **रामदेवजी की अवतार लीला**-इसमें रामदेव जी के जन्म से लेकर समाधि तक का विस्तृत वर्णन 'खंभा खंभाखंभारे' तर्ज में किया गया है। मू० १॥)

६. **भक्ति उपदेश भजनमाला**—यह पुस्तक ब्रह्मज्ञान भक्ति रहस्य तथा वेदान्त के प्रश्नोत्तर सहित लिखी गई है। भजन, दोहे अर्थ सहित वेद मन्त्र सभी रोचक ढंग से लिखे गये है जो प्रत्येक मनुष्य मात्र के लिए बहुत ही उपयोगी हैं। मूल्य २॥) ढाई रुपया।

७. **भक्ति प्रकाश प्रभाकार**—मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए इस अनुपम ग्रन्थ को प्रकाशित किया गया है। मू० केवल २॥) ढाई रु०।

८. **आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति अर्थात् सरल देहाती घरेलू इलाज** - उच्च विभूतियों एवं उच्च महात्माओं द्वारा आजमाइश किये हुए इलाज जो सहज ही उपलब्ध हो सकें। मू० २॥) ढाई रुपया।

९. **रामजन गुटका**—श्री जीवनदासजी के शिष्य बुन्दूराम मात्रंगी कृत ब्रह्मज्ञान और आत्मा अनुभव तथा वेद सिद्धान्त के आधार पर लिखा गया है। मू० २॥)

१०. **ब्रह्मज्ञान प्रकाश** श्री बुन्दूराम मात्रंगाजी ने ब्रह्मज्ञान और आत्मज्ञान भजन, पद्य, छन्द द्वारा बहुत ही सुन्दर ढंग से लिखा है। मूल्य १॥) डेढ़ रुपया।

११. **मोट मत मुक्तसागर**—श्री साधु मोट रामजी द्वारा लिखा ज्ञान का यह अमूल्य भण्डार अवश्य मंगाइये। मू० १॥) डेढ़ रुपया।

१२. **कल्याण भारती**—शब्द, चौपाई मिलान द्वारा बुद्धि को ठीक भगवान के हित में लगाने वाली पुस्तक। मूल्य २॥) ढाई रुपया।

१३. **शंकरदास ब्रह्मज्ञान**—सनातम धर्मी भजनों में बम्बई टाइप के मोटे अक्षरों में इस पुस्तक को छापा गया है। यह पुस्तक निर्गुण की खान है। मू० ढाई रुपया।

पता—देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाजार, दिल्ली—६

कथावाचकों, उपदेशकों, ज्ञानी, विद्वानों तथा हर गृहस्थ के लिए

दृष्टान्त महासागर सम्पूर्ण

संतराम संत

इस ग्रन्थ में वैदिक, लौकिक, सामाजिक, धार्मिक ऐतिहासिक, राजनीतिक, भक्ति और ज्ञान-वैराग्य आदि सभी विषयों में अच्छे से-अच्छे दृष्टान्तों का संकलन किया है। संसार के अनेक महापुरुषों, राजाओं, विद्वानों एवं सिद्धों के अनुभूत तत्वों का इसमें अनोखा समावेश है। महिलाएं, उपदेशक, दृष्टान्त सुनाकर अपने नाम का सिक्का जमाने के साथ-साथ बच्चों को उत्तम शिक्षा भी दे सकती हैं। पृष्ठ २५६ सजिल्द पुस्तक का मू० ४।।) साढ़े चार रुपया, डाक व्यय १।।) अलग।

जो पूछोगे वही मिलेगा

चमत्कार ज्योतिष अथवा मूकगुप्त प्रश्नावली

ले०–रतीराम ज्योतिषी

पास, फेल, विवाह, शादी, भाग्य उदय कब होगा, माता-पिता का सुख कैसा, कितने विवाह होंगे, नौकरी कब मिलेगी, मुकदमे में हार होगी या जीत, मकान बनेगा या नहीं, चोरी गई वस्तु मिलेगी या नहीं, खोया हुआ आदमी मिलेगा या नहीं, दंगल की हार-जीत इत्यादि ३१ प्रश्न ऐसे हैं जिनकी रोजाना जरूरत रहती है। बस अधिक क्या लिखें। मू० २.०० दो रुपया, डाक खर्च १.०० रु०।

श्री हनुमानजी का जीवन चरित

ले०–ठाकुर सुखरामदास चौहान

इस ग्रंथ में पवन पुत्र हनुमान के सभी चरित्रों को मनोहारी ललित भाषा में प्रस्तुत किया गया है। आप प्रतिदिन श्री बजरंगी का स्मरण करते होंगे, परन्तु आप उनके इतिहास से शायद ही परिचित हों, भक्ति प्रेम की इस कमी को दूर करने के लिए ही इस पुस्तक को प्रकाशित किया गया है।

इसमें वीर हनुमान का जीवन-चरित, उनके माता-पिता से लेकर रामचन्द्रजी के समय तक एक रोचक उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक प्रत्येक महावीर प्रेमी को अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य ४।) साढ़े चार रुपया। डाक खर्च १।।) पृथक।

रामलीला करने वालों को अनुपम भेंट

जगदीश रामायण नाटक

लेखक–जगदीश शर्मा

इस प्रकार की कोई रामायण अभी तक उपलब्ध नहीं थी। विद्वान लेखक ने नाटक के रूप में पूरे ९ भाग देकर लिखा है। समस्त राम लीला मण्डलियों, राम भक्तों, स्कूलों, मिलों में क्लबों में जो भी रामलीला कराने के शौकीन हों हमारे जगदीश रामलीला नाटक को अवश्य मंगाकर पढ़ें। मूल्य सम्पूर्ण १०) दस रुपये। डाक खर्च माफ।

पता–देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाजार दिल्ली–६